कल्हण-कृत राजतरंगिणी में वर्णित कतिपय राजाओं एवं मंत्रियों का चरित्र-चित्रण

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभाग में डी० फिल्० उपाधि-हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध)

निर्देशक

प्रोफेसर डॉ० सुरेशचन्द्र पाण्डेय

पूर्व विभागाध्यक्ष संस्कृत-विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

शोधकर्ता

उमेशकुमार मिश्र

एम० ए०

सन् १९८६ ई०

निवेदन

मैंने सन् १९९० में संस्कृत से एम०ए० परीक्षा इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अध्ययन कर प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। तदनन्तर गुरुवर डॉ० सुरेशचन्द्र जी पाण्डेय से मिलकर निवेदन किया कि मैं डी० फिल० के निमित्त शोध-कार्य में प्रवृत्त होना चाहता हूँ, इस सम्बन्ध में मुझे आज्ञा तथा उचित परामर्श प्रदान करने की कृपा करें। डॉ० पाण्डेय जी ने पुनः मिलने को कहा।

मैं ने एक महीने बाद गुरु जी से पुनः भेंट की। तब उन्हौंने मुझे महाकवि कल्हण-कृत राजतरंगिणी प्रबन्ध को देखने तथा समझने का निर्देश प्रदान किया। यह ग्रन्थ कश्मीर के राजाओं के इतिहास का विशालकाय काव्य-प्रबन्ध है, सम्पूर्ण ग्रन्थ को शोध का विषय नहीं बनाया जा सकता। राजतरंगिणी का सामान्य अध्ययन कर मैं पुनः गुरुवर डॉ० पाण्डेय की सेवा में उपस्थित हुआ, उन्होंने परामर्श तथा आदेश प्रदान किया कि तुम राजतरंगिणी के कतिपय चुने हुए प्रतिनिधिभूत राजाओं एवं मन्त्रियों के चरित्र का आकलन कर एक शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत करो। तदनन्तर उनकी आज्ञानुसार एवं परामर्श से विश्वविद्यालय की शोध-समिति ने मुझे डी० फिल० उपाधि के अनुसन्धान -हेतु 'कल्हणकृत राजतरङ्गिणी में वर्णित कतिपय राजाओं एवं मंत्रियों का

चरित्र चित्रण' विषय पर कार्य करने की अनुमति प्रदान की।

शोध कार्य के लिए मेरा पंजीयन सन् १९९३ में हो गया। और मैं राजतरंगिणी के कतिपय राजाओं तथा मन्त्रियों के चरित्र के अध्ययन में जुट गया। इस विशालकाय प्रबन्ध से प्रतिनिधिभूत राजाओं और मन्त्रियों का चयन करना तथा उनके चरित्र का विश्लेषण करना अत्यन्त कठिन कार्य था, यह अध्ययन करते समय किरातार्जुनीय के प्रथम सर्ग में कही गयी वनेचर की यह उक्ति मुझे याद आयी अर्थात् वनेचर की उक्ति का अनुभव यहाँ मुझे हुआ-

निसर्ग दुर्बोधमबोध विक्लवाः

क्व भूपतीनां चरितं क्व जन्तवः।

तवानुभावोऽयमवेदि यन्मया

निगूढतत्त्वं नयवर्त्म विद्विषाम्॥

(किरात० सर्ग १।६)

वनेचर ने धर्मराज युधिष्ठिर के अनुग्रह से कुरुराज सुयोधन का चरित जाना था, मैं ने भी अपने गुरुद्वय- डॉ० सुरेशचन्द्र पाण्डेय तथा डॉ० जयशङ्कर त्रिपाठी की कृपा से कश्मीरी राजाओं-मन्त्रियों के गूढ़-रहस्य भरे चरितों को बहुत कुछ जाना तथा इस शोध-कार्य को पूरा किया।

इस शोध-प्रबन्ध में कुल पाँच अध्याय हैं-

१. पहला अध्याय प्रस्तावना है, जिसमें मैंने अपने शोध-प्रबन्ध के लक्ष्य को स्पष्ट किया है।

२.

दूसरे अध्याय में राजतरंगिणी की परम्परा कहाँ से है इसका विवेचन है। मैंने इसमें यह बताया है कि कवि कल्हण की रजतरंगिणी का आदर्श या परम्परा वह नहीं है जिसमें रामायण, महाभारत या रघुवंश की रचना हुई है। राजतरंगिणी उस परम्परा की रचना है जिसमें राजा अपना चरित्र स्वयं लिख कर या लिखवा कर अपने यश को अमर करना चाहँता है, जो कि भारतीय परम्परा के विरुद्ध है।

३. तीसरे अध्याय में विस्तार से पाँच राजाओं और एक रानी (जो कि शासिका बनी) के चरित्रों का विश्लेषण एवं मूल्यांकन किया गया है।

४. चौथे अध्याय में विशेष रूप से तीन मन्त्रियों एवं कुछ छिटपुट राजपुरुषों के चरित का विश्लेषण है, इन मन्त्रियों में कल्हण के पिता चम्पक महाप्रभु भी हैं।

५. पाँचवाँ अध्याय उपसंहार है, इस अध्याय में मैंने राजाओं-मन्त्रियों के

चरित-विश्लेषण का निष्कर्ष बताया है। मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि एक-दो छोड़कर सभी कश्मीरी राजा धन लूटने वाले लुटेरे तथा प्रजा की उपेक्षा कर विलास में डूबे रहने वाले थे।

इस शोधकार्य में मैंने राजतरंगिणी के तीन संस्करणों का ही उपयोग किया है। अन्य संस्करणों को केवल देखमात्र लिया है। दो संस्करण तो ये हैं- १. पण्डित रामतेजशास्त्री कृत हिन्दी अनुवाद से युक्त राजतरंगिणी (पंडित पुस्तकालय, बनारस)। इसका अनुवाद सुबोध और सही है। २. डॉ० रघुनाथ सिंह कृत भाष्य से संयुक्त राजतरंगिणी, ४ खंड (हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, पिशाचमोचन, वाराणसी)। मैं इन दोनों विद्वानों का अपने शोध-कार्य के लिए अनुगृहीत हूँ। ३. तीसरा संस्करण है- पंडित रणजीत सीताराम का अंग्रेजी अनुवाद, जो साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली से प्रकाशित है। इस ग्रन्थ का उपयोग मैंने कुछ सन्दिग्ध श्लोकों के अनुवाद के स्पष्टीकरण के लिए किया है।

इस शोध-कार्य के प्रसंग में मैं अपने घनिष्ठ मित्र डॉ० सुरेन्द्रकुमार पाण्डेय पी०सी०एस० (सम्प्रति सिटी मजिस्ट्रेट प्रथम, इलाहाबाद) का बहुत आभारी हूँ कि वे समय-समय पर अपने परामर्श से मेरी कठिनाइयाँ दूर करते रहे हैं।

प्रस्तुत शोध-कार्य में धर्मपत्नी ममता मिश्रा ने जो गार्हस्थिक कार्यों से मुझे निश्चिंत कर सहयोग प्रदान किया है एतदर्थ उन्हें भी धन्यवाद देना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ।

पूज्य गुरुवर्य प्रोफेसर सुरेशचन्द्र पाण्डेय पूर्व-विभागाध्यक्ष संस्कृत विभाग, इलाहाबाद

विश्वविद्यालय, इलाहाबाद ने अपने अप्रतिम एवं बहुमूल्य सुझावों-निर्देशों एवं विचारों से समय-समय पर प्रेरणा एवं आशीर्वाद प्रदान किया एतदर्थ मैं उनका हृदय से आभारी एवं ऋणी हूँ।

हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य विद्वान, समालोचक एवं कवि डॉ० जयशङ्कर त्रिपाठी जी ने यदि अपने आशीर्वाद एवं ज्ञान से सहयोग न दिया होता तो मेरा यह शोध-कार्य समय से पूर्ण न हो पाता। अतः उनके प्रति मैं श्रद्धा सम्मान व्यक्त करता हूँ।

अपने शोध-प्रबन्ध की सामग्री जुटाने में मुझे कई स्थानों से अध्ययन करना पड़ा, विशेषरूप से हिन्दी-संग्रहालय - हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, इलाहाबाद संग्रहालय इलाहाबाद और इलाहाबाद विश्वविद्यालयलायब्रेरी इलाहाबाद मेरे लिए बहुत सहायक सिद्ध हुए, इनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

इस शोध ग्रन्थ के टंकक श्री मधुप शर्मा को भी स्वच्छ टंकण के लिए धन्यवाद देता हूँ।

शोधच्छात्र

उमेश कुमार मिश्र

उमेशकुमार मिश्र

विषय-सूची

अध्याय २

अध्याय ३

अध्याय ५

सहायक सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

राजतरंगिणी के प्रयुक्त संस्करण

१. राजतरंगिणी - (मूल तथा हिन्दी अनुवाद)
- पं० रामतेजशास्त्री (पंडित पुस्तकालय, वाराणसी)

२. राजतरंगिणी (मूल तथा हिन्दी भाष्य)
- डॉ० रघुनाथ सिंह (हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी)

३. राजतरंगिणी - रीवर ऑफ किंग (अंग्रेजी अनुवाद)
- आर-एस-पंडित (साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली)

४. राजतरंगिणी दो भाग (मूल मात्र)
- विश्वेश्वरानन्द (विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर)

अन्य ग्रन्थ

५. विक्रमांकदेव चरित - बिल्हण

६. काव्यादर्श - दण्डी

७. भारतीय इतिहास का उन्मीलन - श्री जयचन्द्र विद्यालंकार

८. नीलमत पुराण - नीलमुनि

९. महाभारत - द्वैपायन व्यास

१०. रामायण - महर्षि वाल्मीकि

११. रघुवंश - महाकवि कालिदास

१२. ब्रह्मपुराण

१३. अग्निपुराण

१४. विष्णुपुराण

१५. बाबरनामा (साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली)

१६. संस्कृत साहित्य का इतिहास (हन्दी-अनुवाद)
- ए०वी० कीथ, अनुवादक - मंगल देव शास्त्री मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली

१७. संस्कृत साहित्य का इतिहास - पं० बलदेव उपाध्याय

१८. विस्मय के विकल्प - डॉ० जयशङ्कर त्रिपाठी

१९. मनुस्मृति

२०. याज्ञवल्क्य स्मृति

२१. कौटलीय अर्थशास्त्र

२२. हर्षचरित - महाकवि बाण

२३. शुक्रनीति

२४. ध्वनि सिद्धान्त : विरोधी सम्प्रदाय : उनकी मान्यताएँ
- डॉ० सुरेशचन्द्र पाण्डेय

२५. नाट्यशास्त्र - अभिनवभारती टीका

२६. दोहावली - तुलसीदास

२७. कवि और काव्यशास्त्र - डॉ० सुरेशचन्द्र पाण्डेय

२८. आठवाँ अमृत

- डॉ० जयशङ्कर त्रिपाठी

२९. प्राचीन भारत का इतिहास

- डॉ० भगवतशरण उपाध्याय

३०. भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण

- डॉ० भगवतशरण उपाध्याय

३१. हिन्दुस्तान की कहानी

- पं० जवाहरलाल नेहरू

३२. महाकाल संहिता - चार भाग

३३. कथासरित्सागर

- कवि सोमदेव, तीन भाग

३४. कला-विलास

- कवि क्षेमेन्द्र

३५. मुग्धोपदेश

- कवि कल्हण

३६. भारतीय संस्कृति

- डॉ० देवराज

३७. पुराण विमर्श

- पं० बलदेव उपाध्याय

३८. पुराण परिशीलन

- म०म०गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी

३९. पौराणिक शब्दकोश

- राणाप्रसाद शर्मा

४०. भारत सावित्री

- डॉ० बासुदेवशरण अग्रवाल

४१. हिन्दूधर्मकोश

- डॉ० राजबली पाण्डेय

४२. ज्योतिष पञ्चशती

- डॉ० सुरेन्द्र कुमार पाण्डेय

पत्रिकाएँ

सम्मेलन पत्रिका - हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

हिन्दुस्तानी - हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

संगमनी (संस्कृत) - संस्कृत परिषद दारागंज, इलाहाबाद

भारतोदयः का पुराण संग्रह - ज्वालापुर

॥ कल्हण-कृत राजतरंगिणी में वर्णित

कतिपय राजाओं एवं मंत्रियों का चरित्र-चित्रण ॥

अध्याय १

प्रस्तावना

संस्कृत काव्यधारा में जो ऐतिहासिक प्रवन्ध लिखे गए हैं उनमें कल्हण का राजतरंगिणी काव्य-प्रबन्ध भी एक विशिष्ट कृति है पर यह प्रबन्ध उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना महत्वपूर्ण बाण का हर्षचरित है । आगे शोध-प्रबन्ध के प्रसंग में इस पर विचार होगा, लेकिन किन्हीं कारणों से बीसवीं शती, में इस राजतरंगिणी की चर्चा बहुत की गयी । इस चर्चा को दृष्टिगत कर इस काव्य-प्रबन्ध में आये कतिपय राजाओं तथा मंत्रियों के चरित्र को विश्लेषण का विषय बनाकर मैं अनुसन्धान में प्रवृत्त हो रहा हूँ ।

कवि कल्हण

राजतरंगिणी का रचयिता कश्मीरी कवि कल्हण है उसकी जैसी रुचि कश्मीर के इतिहास के प्रति है उतना ही वह कवि-प्रतिभा से भी सम्पन्न है। उसने इस काव्य-प्रबन्ध की रचना सन् ११४८-५० ईसवी में की । उस समय कश्मीर में जयसिंह राज्य कर रहा था। अनुमान से कल्हण का जन्म ११०० ईस्वी में हुआ । कल्हण की जन्म-भूमि कश्मीर में परिहासपुर है । परिहासपुर का वर्णन कल्हण ने राजतरंगिणी में किया है, परिहासपुर के समीप ही वितस्ता और सिन्धु का संगम होता है जिसे प्रयाग कहते हैं । कल्हण के अनुसार राजा ललितादित्य ने परिहासपुर नगर

को बसाया था[1]। और वहां उस राजा ने परिहासकेशव संज्ञक भगवान् की चांदी की मूर्ति स्थापित की थी।

कल्हण के पिता का नाम चम्पक था । चम्पक राजा हर्ष (१०८६-११०१ ई०) के विश्वसनीय अमात्य थे। राजा हर्ष को उसके विरोधियों ने छल-पूर्वक हत्या कर दी । उसकी हत्या के बाद राज्याधिकार के लिए युद्ध तथा संघर्ष होता रहा । हर्ष के शत्रु उच्चल और सुस्सल ने पहले राज्य को आपस में बाँट लिया। इसके अनन्तर गर्ग चन्द्र, भिक्षाचर दूसरे दावेदार इस संघर्ष में आते रहे। ११२८ ई० में सुस्सल अपने द्वारा रचित एक षड़यंत्र में भारा गया। तब उसका पुत्र जयसिंह राज्य का उत्तराधिकारी बना। उसने कूटनीतिपूर्वक विद्रोहियों का दमन करते हुए लम्बे समय तक शासन किया। उसके शासनकाल में ही कल्हण ने राजतरंगिणि की रचना ११४८-५० ई० में की[2]।

राजा हर्ष की मृत्यु के बाद चम्पक का प्रभाव समाप्त हो गया था, वरन् उनके ऊपर संकट भी था। इसी कारण उनका पुत्र कल्हण कभी राज्य का आमात्य नहीं बना, पर प्रतिभा तथा विद्वता से राज्यसभा में उसका समादर था। 'कल्हण' शब्द कश्मीरी भाषा में कल्याण का अपभ्रंश है। कल्हण वास्तव में अपनी प्रतिभा से कल्याण का स्वरूप था। राजनीति तथा कूटनीति का ज्ञान उसको अपने पिता से उत्तराधिकार में मिला था। अपने पिता से ही उसने कश्मीरी राजाओं की अनेक राजनीतिक कहानियों को जाना होगा।

कल्हण राज्य सभा में जरूर था, पर स्वाभिमानी ब्राह्मण और कवि था। उसने राजा एवं

पूर्व राजाओं की स्तुति तथा व्यर्थ की प्रशंसा नहीं की है। उसने अपनें को तटस्थ रख कर राजाओं के गुणों तथा दोषों एवं उनकी घनघोर बुराइयों को भी अपनें प्रबंध में वर्णन करने में तनिक भी संकोच नहीं किया है। अपने कश्मीर वासियों के सुन्दर होने पर भी उनके मिथ्यावादी एवं चञ्चलचित्त होने के चरित्र दोष को कहने में संकोच नहीं किया। उसने ग्रंथ के आरम्भ में ही अपनी वाणी को स्थेय (पंच या न्यायाधीश) की सरस्वती कहा है जो राग द्वेष से बहिष्कृत होती है, ऐसे ही गुणवान तथा श्लाघ्य न्यायाधिकारी के समान कल्हण अपने को सच्चा इतिहास लेखक और कवि मानता है।[3] कल्हण को कवि होने का बड़ा अभिमान है, वह कवि की प्रशंसा करते हुए लिखता है कि अमृत के प्रवाह को फीका करने वाला कवि का लोकोत्तर गुण (कृतित्व) वन्दनीय है जिससे वह दूसरे के यश को और अपनें यश को भी सदा के लिये अमर कर देता है। रमणीय काव्य के निर्माता प्रजापति कवि (अथवा कवि और प्रजापति) को छोड़कर दूसरा कौन है जो अतिक्रांत (बीते हुए) समय को वर्तमान की तरह प्रत्यक्ष कर सकता है[4]।

जिस राज्य या भूभाग में प्रजापति रूप कवि ने जन्म नहीं लिया, अथवा जिस राजा या राजकुल ने कवि को सम्मान नहीं दिया, उसका नाम (इतिहास) अंधकार में डूब गया, उसको कोई जान नहीं सका। कल्हण लिखता है कि गोनन्द के पूर्व हुए कश्मीर मंडल के बावन राजाओं का इतिहास लुप्त हो गया जो कौरव - पांडवों के समकाल थे, कारण यह था कि उस काल में काश्यप (कश्मीर) राजाओं के कुकृत्यों के कारण उनकी कीर्ति काया के (इतिहास -) निर्माता प्रजापति जैसे कवि नहीं हुए -

तत्र कौरवकौन्तेय समकालमभवन् कलौ

आ गोनन्दात् स्मरन्ति स्म न द्वापञ्चाशतं नृपान् ।।

तस्मिन् काले ध्रुवं तेसां कुकृत्यैः काश्यपीभुजाम्

कतरिः कीर्ति काव्यस्य नाभुवन् कविवेधसः ।।

कवि की महिमा :

कल्हण (इतिहास - रूपी) काव्य को लोकोत्तर सृष्टि मानता है, जिसके बिना संसार अंधा है। ऐसी ही मिलती जुलती वात आचार्य दण्डी ने भी काव्यादर्श में लिखी है, पर वे शब्द (वाणी) रूपी प्रकाश के अभाव में तीनो लोक को अंधकार में डूबा हुआ देखते है।[5] साथ ही उन्होने कल्हण की बात भी गम्भीर परिवेश में कही है दर्प के रूप में नहीं। दण्डी का कहना है कि अतीत के राजाओं का यशरूपी बिम्ब वाङ्मय के दर्पण में आज भी प्रतिबिम्बित है, जब कि अब वे राजा नहीं रह गए हैं, यह आश्चर्य देखो।[6] किन्तु कल्हण ने इसी बात को अति स्वाभिमान के साथ कहा है, जो कश्मीरी कवियों की एक विलक्षण परंपरा की ओर संकेत करता है। कल्हण कह रहा है - उस कवि-कर्म को नमस्कार है जिसके अनुग्रह के बिना वे महान् प्रतापी राजा स्मरण भी नहीं किए जाते जिनकी भुजा रूपी वनों की छाया में यह पृथिवी समुद्र की करधनी पहने निर्भय बनी थी।[7] तथा जिन राजाओं ने हाथियों के मस्तक पर अपने चरण रखे थे, जिन्होंने

महान लक्ष्मी प्राप्त की थी, जिनके राजभवन में चन्द्रमुखी युवतियॉ दिन में ही चाँदनी बिखेरा करती थीं ऐसे लोकपति राजाओं को लोक स्वप्न में भी नहीं जानता यदि उन पर कवियों की दृष्टि नहीं पड़ी। हे कवि कर्म ! तुम्हारी शतशः स्तुतियाँ क्या करूँ। तुम्हारे बिना यह जगत् अन्धा है।[8] दण्डी ने लिखा था कि शब्दरुपी प्रकाश के बिना संसार अन्धकार में डूबा रहता। इसी बात को कल्हण ने कवि के स्वाभिमान में मुखरित किया है।

कल्हण का अपने कवित्व के प्रति यह अभिमान यद्यपि कश्मीरी कवियों का परम्परागत है तथापि कल्हण की निज की व्युत्पन्न प्रतिभा ने उसके हृदय में इस अभिमान को बहुत उल्बण बना दिया है। जिसकी अभिव्यक्ति वह कई तरह से करता है, पाठक उसे पढकर प्रभावित होता है। कल्हण के पूर्व बिल्हण नें भी अपने 'विक्रमांक देव चरित' महाकाव्य में सामान्य रूप से ऐसी ही बात कही कि लंकापति रावण का यश जो संकुचित हो गया और रघुराज पुत्र राम जो महान् कीर्ति के पात्र बन गये, यह सब आदि कवि वाल्मीकि की महिमा थी, इसलिये राजाओं को चाहिये कि वे कभी कवियों की उपेक्षा न करें[9]। कल्हण का कवि - अभिमान इसकी अपेक्षा बहुत उदात्त है।

राजतरंगणीं की रचना के आधारभूत ग्रंथ

कल्हण ने 'राजतरंगिणीं' की रचना में परम्परा से प्राप्त जिन ग्रंथों से सहायता ली है उनका उल्लेख प्रथम तरंग के आरम्भ में ही किया है, ये ग्रंथ हैं - नीलमत पुराण, सुव्रत का प्रबंध, क्षेमेन्द्र की नृपावली, हेलाराज की पार्थिवावली, छविल्लाकर की कृति, पद्ममिहिर का ग्रंथ, पूर्व विद्वानों

द्वारा रचित राज- कथा के ग्यारह ग्रंथ तथा राजाओं द्वारा मंदिरों की प्रतिष्ठा एवं अन्य प्रशस्ति पत्रों में लिखे अभिलेख। इनमें सबसे अधिक सामग्री एवं सूत्र कल्हण को नीलमत पुराण से मिले है। नीलमत पुराण कश्मीर के भूगोल - इतिहास का आदि ग्रंथ है, इसके रचयिता नागकुल के नीलमुनि हैं। कश्मीर के भूगोल का जैसा वर्णन इसमें पाया जाता है वह आज भी वैसा ही है, केवल नाम बदल गयें हैं। कश्मीर के भूगोल का वर्णन कल्हण ने नीलमत पुराण के आधार पर ही किया है। सम्राट हर्ष के समय चीनी यात्री ह्वानसांग आया था, तब भी कश्मीर में नीलमत पुराण पढ़े - सुने जाने का प्रचलन था। कश्मीर में जब मुस्लिम शासन हो गया तब भी नीलमत पुराण पढा - सुना जाता था। जोन राज ने दूसरी राजतरंगणी पन्द्रहवीं शती में लिखी, इस शती में कश्मीर का बादशाह जैनुल आबदीन (१४२० -१४७० ई०) भी पंडितों से नीलमत पुराण सुना करता था।

नीलमत पुराण में ही यह वर्णन है कि पहले समूचा कश्मीर मंडल सतीसर था। कश्यप ने उस जल को निकाल कर बाहर किया (शायद वह बारामूला से बाहर निकाला गया) तब यह सुहावना भूमिमंडल बन गया, क्यूंकि ऋृषि कश्यप ने उस जल को बाहर निकाला, उसके अनन्तर यह भूमि मण्डल प्रकट हुआ, इसलिये इस भूमि का नाम काश्यपी हुआ। काश्यपी ही आगे चलकर कश्मीर संज्ञा में परिवर्तित हो गया। कल्हण ने अनेक बार कश्मीर के लिये काश्यपी संज्ञा का प्रयोग किया है। एक स्थल पर कवि ने अलंकारोक्ति में इस बात को आकर्षक रुप से कहा है- सूर्य ने यह जानकर कि काश्यपी भूमि (कश्मीर मंडल) को मेरे पिता ने निर्मित किया है अतः ग्रीष्म ऋृतु में मेरी किरणों का असहनीय ताप इसे न सहना पड़े, वह ग्रीष्म ऋृतु में भी अपनी

किरणों को यहॉ तीक्ष्ण नहीं होने देता[10]।

कल्हण की प्रबंध रचना का लक्ष्य

प्रबंध रचना की भूमिका प्रस्तुत करते हुए कवि कल्हण ने अपनी विनय न कह कर अपनी सामर्थ्य की बाते ही कही है। सामर्थ्य की बात करते हुए उसने कहा है - मैने अपनी प्रतिभा द्वारा सर्व संवेद्य (अप्रत्यक्ष) भावों को इस प्रवंध में देखा है, अन्यथा कवि की दिव्यदृष्टि का प्रमाण क्या होता है? कथा का विस्तार करने के लिये मैने वैचित्र्य का (व्यर्थ) विस्तार नहीं किया है, वैचिन्य का विस्तार न होने पर भी सज्ञनों को अपनी प्रीति के लिये इस प्रबंध में बहुत कुछ मिलेगा[11]।

आगे भी वह लिखता है - मेरी यह कथा राजाओं के लिये औषध तुल्य होगी जो उनके उत्कर्ष और ह्रास में भैषज्य का काम करेगी। (उत्कर्ष में उनको संयम की शिक्षा देगी तथा ह्रास में धैर्य बंधायेगी। जगत के अनंत व्यवहारों से परिपूर्ण मेरे इस ग्रंथ को कौन ऐसा संज्ञानी होगा, जो हृदयंगम नहीं करना चाहेगा। प्राणियों के क्षणभंगुर जीवन की परिचिंत करते हुए मैने अपने इस काव्य (इतिहास) प्रबंध मे शांत रस को प्रमुखता दी है[12]।

राजतरंगिणी की कथा कुल आठ तरंगों मे विभाजित है इनमें आठवीं तरंग का विस्तार अधिक है और इस तरंग की कथाएं अधिकांश कवि के समय से कुछ ही पूर्व की हैं, जिनको वह अच्छी तरह जानता है तथा कुछ कथा - भाग कवि के जीवन काल का है। शेष सात तरंगो की कथाएं कवि के लिए पूर्ण रुप से इतिहास है, यहाँ तक कि प्रथम तरंग में तो कथा (इतिहास) का आरम्भ

युधिष्ठिर के काल से होता है। पूरा प्रबन्ध अनुष्टुप छन्द में लिखा गया है लेकिन बीच-बीच में आरम्भ और अन्त में भी स्रग्धरा, शार्दूल विक्रीडित, हरिणी, मन्दाक्रान्ता, वसन्ततिलका मालिनी आदि छन्दों का प्रांजल प्रयोग कवि ने किया है। यद्यपि सभी अनुटुप छन्द समापिका क्रिया से संयुक्त है। तो भी कहीं-कहीं दो में अथवा तीन में अथवा चार में अथवा पॉच अनुरूप छन्दों में अन्त में समापिका क्रिया आती है अर्थात् वाक्य पूरा होता है, इन समान्वित छन्दों की संज्ञा क्रमशः युग्म, तिलक, चकल्लक तथा कुलक अंकित कर दी गई है। कल्हण का भाषा पर पूर्ण अधिकार है, उसकी भाषा का सहज प्रवाह मन को मोह लेता है, भाव और अर्थ के अनुसार उसने शब्दों का सुन्दर विन्यास किया है, पर इतना सुन्दर नहीं है कि वह कालिदास के निकट पहुँच सके। वह कवि है, राजतरंगिणी काव्य-प्रबन्ध है पर वह इतिहास ज्यादा है, इसमें दो मत नहीं हो सकते। काव्य की प्रांजल भाषा और भाव-प्रवण ऐतिहासिक तथ्यों के उल्लेख से ग्रन्थ की इतिहास-कथाएं बरबस पाठकों को आकर्षित करती हैं।

प्रत्येक तरंग के अनुसार छन्दों की संख्या इस प्रकार है -

तरंग	-	कुल छन्द
प्रथम तरंग	-	३७३
द्वितीय तरंग	-	१७१
तृतीय तरंग	-	५३०
चतुर्थ तरंग	-	७२०
पञ्चम तरंग	-	४८३
षष्ठ तरंग	-	३६८
सप्तम तरंग	-	१७३२
अष्टम तरंग	-	३४४९
छन्दों का कुल योग	-	७८२६

कल्हण शिव का भक्त है उसने प्रत्येक तरंग के आरम्भ में शिव अथवा उनके अर्धनारीश्वर रूप की वन्दना की है या कि उनके रूप संपदा का चित्र शिव पार्वती के संवाद के रूप में मंगलाचरण के लिए चित्रित किया है। उसकी प्रत्येक उक्ति नूतन है। छठे तरंग का निम्न मंगलाचरण छन्द इस दृष्टि से पठनीय है जिसमें कवि ने शिव के प्रति पार्वती के अनिर्वचनीय प्रेम की वन्दना की है, वह कहता है-

नेदं पर्ण समीरणाशन तपोमाहात्मयमुक्षोरगौ

पश्यैतावत एवं संप्रति कृतौ तन्मात्रवृत्ती बहिः।

प्रेम्णौवार्धमिदं चराचरगुरोः प्रापेयमात्मस्तुती

रेवं दैववधूमुखाछुति सुखाः श्रृण्वन्त्यपर्णावतात्।।

(राज० ६/१)

अर्थात् वह अपर्णा (पार्वती) हमारी रक्षा करें, जो देववधुओं के मुख से कानो में सुहावनी अपनी प्रशंसा इस प्रकार सुन रही है - हे भवानी ! आपने शिव के आधे शरीर पर जो अधिकार प्राप्त किया है, वह पत्ते चबा कर तथा पत्ते भी त्याग कर (अपर्णा होकर) केवल वायु पीकर तप करने की महिमा का फल नही है, वरंच यह महिमा आपके अनिर्वचनीय प्रेम की है, इस प्रेम मे आप शिव के आधे शरीर पर अधिकार किये बैठी हैं। नही तो, शिव का वाहन बैल भी पत्ते खाता है और उनके गले में लिपटा साँप वायु पीकर रहता है। पर ये सदा शिव के शरीर से

बाहर पड़े रहते हैं, उनके अन्तःकरण में इनको स्थान नही मिला है।

इस छन्द में पार्वती के लिए अपर्णा अमिधान (अपर्णा अवतात्) प्रस्तुत अर्थ को अधिक चमत्कृत कर देता है।

कश्मीर में 'राजतरंगिणी' काव्य प्रबन्ध का आदर इसके रचना काल से ही रहा। तथा कल्हण के (तीन सौ वर्ष) बाद पन्द्रहवीं शती में जोनराज ने इसी से प्रभावित होकर आगे के राजाओं के इतिहास के रूप में दूसरी राजतरंगिणी की रचना की। लेकिन यह सब होने पर भी राजतरंगिणी काव्य-प्रबन्ध और कवि कल्हण का कश्मीर से बाहर भारत के दूसरे प्रदेशों में समादर अथवा चर्चा के प्रकरण नहीं मिलते, नहीं इस पर कोई टीका ही प्राप्त होती है। अथवा इतने सारे राजाओं की कथा का समावेश इस विशाल प्रबन्ध में होने पर भी उनमें मे किसी के चरित को लोकर किसी कवि ने काव्य अथवा नाटक आदि की रचना नहीं की है।

अठारहवीं-उन्नीसवीं शतीब्दी में जब अंग्रेजी राज्य की स्थापना भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने आरम्भ की तथा जिज्ञासु अंग्रेज विद्वानों ने भारतीय साहित्य और इतिहास को पढ़ना-खोजना आरम्भ किया तब इतिहास के इस ग्रन्थ राजतरंगिणी पर उनकी निगाहें अपने आप टिक गई। और ग्रन्थ पढ़ा गया तथा प्रकाशित हुआ।

विल्सन, बूलर, स्टीन, ए०बी०कीथ आदि इतिहास-प्रेमी विद्वानों नें राजतरंगिणी को पढ़ा और इसकी प्रशंसा की है।

राजतरंगिणी के संस्करण और उस पर चर्चाएं

राजतरंगिणी का पहला संस्करण कलकत्ता से सन् १८३५ ई० में प्रकाशित हुआ। संपादक हैं मूरक्राफ्ट।

ट्रायर द्वारा संपादित संस्करण १८४० ई० में पेरिस से प्रकाशित हुआ।

काव्यमाला-सीरीज के अन्तर्गत दुर्गाप्रसाद द्वारा संपादित संस्करण १८६२ ई० में बम्बई से प्रकाशित हुआ।

स्टीन द्वारा संपादित संस्करण १८६२ ई० में प्रकाशित है।

रणजीत सीताराम पंडित द्वारा अंग्रेजी-अनुवाद मात्र 'रीवर ऑफ किंग' नाम से साहित्य अकादमी भारत सरकार नयी दिल्ली से प्रकाशित है, साहित्य अकादमी से प्रकाशित द्वितीय संस्करण १६७७ ई० का है। इसका फौरवर्ड पंडित जवाहर लाल नेहरू ने लिखा है। रणजीत सीताराम पंडित (आर०एस०पंडित) श्रीमती विजयलक्ष्मी के पति थे।

पाण्डेय रामतेजशास्त्री ने १६६० ई० में मूल तथा हिन्दी अनुवाद सहित राजतरंगिणी का एक उत्तम संस्करण पंडित पुस्तकालय काशी से प्रकाशित किया।

राजतरंगिणी के अन्य संस्करण हैं -

★ विश्वबन्धु द्वारा संपादित-राजतरंगिणी दो भाग, मूल मात्र, प्रकाशक विश्वेश्वरानंन्द बैदिक शोध संस्थान होशियारपुर संवत २०२२ (१६६५ई०)

★ राजतरंगिणी (हिन्दी अनुवाद) - नन्दकिशोर देव शर्मा, ६७ चोरबागान, भारत मित्र प्रेस, ६७ चोर बागान, कलकत्ता।

★ राजतरंगिणी (हिन्दी अनुवाद) गोपीकृष्ण शास्त्री द्विवेदी, सुलाभ पुस्तकमाला कार्यालय, बनारस, १६६८ वि० (१६४१ ई०)

राजतरंगिणी का सबसे नया संस्करण हिन्दी अनुवाद तथा विविध टिप्पणियों से समलंकृत हिन्दी प्रचारक संस्थान वाराणसी से चार भागों सें अभी (बीसवीं शती के) आठवें दशक में प्रकाशित हुआ है। इसके भाष्यकर्ता है कश्मीर रमयान्तङकरण डा०रघुनाथ सिंह। इन्होने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से इस ग्रन्थ पर शोधकार्य करके पी०एच०डी० उपाधि प्राप्त की है।

'हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर' के लेखत प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान ए०बी०कीथ ने अपने राजतरंगिणी पर विस्तार से लिखा है, इस ग्रन्थ ने ग्रन्थ में साहित्य तथा इतिहास दोनों दृष्टियों से कीथ को बहुत आकर्षित किया है। रणजीत सीताराम पंडित ने भी अपने अंग्रेजी अनुवाद में स्थान - स्थान पर विस्तृत टिप्पणियाँ दी हैं। नया संस्करण के लेखक डॉ०रघुनाथ सिंह ने अनुवाद के साथ टिप्पणी के रूप में विस्तृत व्याख्या या भाष्य ही लिख दिया है। किन्तु इन अनुवादों में पंडित रामतेजशास्त्री का हिन्दी-अनुवाद ही प्रामाणिक तथा स्पष्ट है। डॉ० रघुनाथ सिंह की ऐतिहासिक टिप्पणियाँ राजतरंगिणी के सम्बन्ध में अवश्य ज्ञानवर्धक है, परन्तु राजतरंगिणी का उनका अनुवाद अनेक स्थलों पर गलत है, और अस्पष्ट तो वह प्रायः है। गलत होने के दो उदाहरण दिए जा रहे है। उच्चल तथा सुस्सल द्वारा हर्षदेव के मारे जाने के बाद सप्तम तरंग को समाप्त करते हुए कल्हण लिखता है -

श्रीः सातवाहनकुलेऽकृत कान्तिराज -

वंशे त्यजन्त्युदयराजकुले प्रतिष्ठाम् ।

श्रृंगं सुरैर्विरहितं जहती हिमाद्रे -

र्दिव्ये सुरगिरेरिव वासर श्रीः ।।

(तरंग ७ / १७३२)

डॉ० रघुनाथ सिंह इसका अनुवाद करते हैं - "जिस प्रकार दिनश्री देवों से रहित हिमाद्रि श्रृंग का परित्याग कर सुमरु गिरि के दिव्य तट पर प्रतिष्ठित होती है, उसी प्रकार राजलक्ष्मी ने सातवाहनकुल एवं कान्तिराज वंश को त्याग कर उदयराजकुल में प्रतिष्ठा प्राप्त की।" [13]

यह अनुवाद प्रसंग के अनुसार ही गलत है, क्योंकि हर्षदेव उदयराज के कुल में उत्पन्न हुआ था। सच यह है कि राजलक्ष्मी उदयराज के कुल को त्याग कर कान्तिराज के कुल नें प्रतिष्ठित हुई हैं।

पं० रामतेजशास्त्री का अनुवाद सही है तथा स्पष्ट भी है -

"जैसे दिन - श्री देवताओं के द्वारा त्यागे हुए हिमालय के शिखर को त्याग कर देवगिरि सुमेरु पर्वत की दिव्य तलैटी पर जाकर विश्राम करती है उसी प्रकार महाराज सातवाहन के वंश में उत्पन्न उदयराज के वंश का निवास स्थान त्याग कर राज्यश्री कान्तिराज के कुल में जाकर विराजमान हो गई।" [14]

एक अन्य उदाहरण है - कवि कल्हण हर्ष की राज्य सभा में चँवर डुलाने, ताम्बूल का बीड़ा देने आदि की सेवा मे रत युवती ललनाओं के सौन्दर्य का आकर्षक वर्णन करता है, वर्णन के अन्त में उसने लिखा है कि -

कर्पूरोद्धूलनस्मेरा भ्रमन्त्यस्तरलभ्रुवः ।

बभ्रुराश्रितपुंवेषा मूषाङ्कच्छलदङ्कताम् ।।

(तरंग ७/६३१)

इसका अर्थ यह है कि वे ललनाएं जब कभी राजसभा में पुरुपवेष में आ जाती थीं तो साक्षात् मीनकेतन कामदेव के उपस्थित होने का भ्रम हो जाता था।

लेकिन डॉ० रघुनाथ सिंह ने पूरे सौन्दर्य चित्रण को पुरुष वेश में उपस्थित ललनाओं का रूप सौन्दर्य समझते हुए अनुवाद प्रस्तुत किया है - "राजा की सेवा में विचरती हुयी चञ्चल भौहों वाली ललनाएं पुरुष वेष ग्रहण करके कामदेव को भी छलने वाले स्वरूप को धारण करती थीं - - - - - आधी बाँह वाली कञ्चुकी से वे अपने स्तनों को ढके रहती थीं।" [15]

कश्मीर में राजाओं का इतिहास कल्हण के बाद भी लिखा जाता रहा, जैसा कि पीछे लिखा जा चुका है, जोनराज ने पन्द्रहवीं शती के मध्य में, कश्मीरी शासक जैमुल आब्दीन के समय दूसरी राजतरंगिणी लिखी। जोनराज के बाद भी प्रजभट्ट तथा श्री शुक ने भी तीसरी - चौथी राजतरंगिणी लिखी। सन् १३३९ ई० के बाद कश्मीर में मुसलमानी राज्य हो गया। वहां की राजभाषा फारसी हो गई। संस्कृत पठन पाठन समाप्त हो गया। डॉ० रघुनाथ सिंह ने मुस्लिम शासकों द्वारा

राजतरंगिणी के फारसी अनुवाद तथा उसके आधार पर कश्मीर राजाओं का इतिहास फारसी में लिखे जाने आदि की विस्तृत चर्चा की है। सन् १५८८ ई० में अकबर कश्मीर के गया था, उस समय उसे राजतरंगिणी की प्रति भेंट की गई थी। उसके आदेश से मौलाना शाह मुहम्मद शाहाबादी ने राजतरंगिणी का अनुवाद फारसी में किया था! अबुल फज़ल ने आईने अकबरी में कश्मीर का संक्षिप्त इतिहास लिखा हैं।[16]

प्रस्तुत शोध कार्य का उद्देश्य

इतना कुछ लिखे जाने के बाद यह कहा जा सकता है कि अब 'राजतरंगिणी' पर कुछ कहने को क्या शेष है? हमने इस शोध-प्रबन्ध में राजतरंगिणी के कुछ प्रसिद्ध राजाओं तथा मन्त्रियों को उस कसौटी पर रख कर विश्लेषित करने का प्रयत्न किया है जो कसौटी देश की परम्परा में, रामायण-महाभारत के आदर्शों पर ऋषियों एवं कौटिल्य जैसे अर्थ शास्त्रियों द्वारा निरूपित है। इस विश्लेषण से यह समझने में सहायता मिलेगी कि भारतीय इतिहास परम्परा में राजतरंगिणी का क्या मूल्य है? और उसके प्रसिद्ध राजाओं की हमारी परम्परा को क्या देन है।

संदर्भ

१. राजतरंगिणी तरंग ४ । १६३ - १६५

लोकपुण्ये पुरं कृत्वा नानोपकरणावलीम् ।

प्रतिपादितवान् जिष्णुग्रामैः सार्कं स विष्णवे ।।

ततः परम परिहासशीलो भूलोकवासवः ।

विहसद्वासवावासं परिहासं पुरं व्यदधात् ।।

तथा राजतरंगिणी ५ । ६६; ७ । १३२६

२. राजतरंगिणी ८ । ३४४७ - ४८

३. राजतरंगिणी १ । ७

श्लाघ्यः स एव गुणवान् रागद्वेष बहिष्कृता ।

भूतार्थ कथने यस्य स्येयस्येव सरस्वती ।।

४. राजतरंगिणी १ । ३ - ४

बन्धः कोऽपि सुधास्यन्दास्कन्दी स सुकवेर्गुणाः ।

येनायाति यशःकायः स्थैर्य स्वस्य परस्य च ।।

कोऽन्यः कालमतिक्रान्तं नेतुं प्रत्यक्षतां क्षमः ।

कविप्रजापतींस्त्यक्त्वा रम्य निर्माणशालिनः ।।

५. काव्यादर्श (दण्डी) १ । ४

इदमन्धन्तमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम् ।

यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते ।।

६. वही १ । ५

आदिराजयशोबिम्बमादर्श प्राप्य वाङ्मयम् ।

तेषामसन्निधानेऽपि न स्वयं पश्य नश्यति ।।

७. राजतरंगिणी १ । ४६

भुजवनतरुच्छायां येषां निषेव्य महौजसां

जलधि रशना मेदिन्यासीदकुतोभया ।

स्मृतिमपि न ते यान्ति क्ष्मापा बिना यदनुग्रहं

प्रकृतिमहते कुर्मस्तस्मै नमः कविकर्मणे ।।

८.　　वही १। ४७

येऽप्यासन्निभकुम्भ शायितपदा येऽपि श्रियं लेभिरे

येषामप्यवसनूपुरा युवतयो गेहेष्वहश्चन्द्रिकाः ।

तांल्लोकोयमवैति लोकतिलकान् स्वप्रेप्यजातानिव

भ्रातः सत्कविकृत्य किं स्तुतिशतैरन्धंजगत्त्वां बिना ।।

९.　　विक्रमांकदेवचरित १ । २७

लंकापतेः संकुचितं यशो यद् यत्कीर्तिपात्रं रघुराजपुत्रः ।

स सर्व एवादिकवेः प्रभावो न वञ्चनीयाः कवयः क्षितीन्द्रैः ।।

१०.　　राजतरंगिणी १ । ४१

असन्तापार्हतां जानन्यत्र पित्रा विनिर्मिते ।

गौरवादिव तिग्मांशुर्धत्ते ग्रीष्मेऽप्यतीव्रताम् ।।

११.　　वही १ । ५-६

न पश्येत् सर्वसंवेद्यान् भावान् प्रतिभया यदि ।

तदन्यद् दिव्यदृष्टित्वे किमिवज्ञापकं कवेः ।।

कथा दैर्घ्यानुरोधेन वैचित्र्येऽप्य प्रवञ्चिते ।

तदत्र किंचिदस्त्येव वस्तु यत् प्रीतये सताम् ।।

१२. राजतरंगिणी १ । २१-२३

इयं नृपाणामुल्लासे ह्रासे वा देशकालयोः ।

भैषज्यभूत संवादिकथा युक्तोपयुज्यते ।।

संक्रान्त प्राक्तनानन्त व्यवहारः सुचेतसः ।

कस्येदृशो न सन्दर्भो यदि वा हृदयंगमः ।।

क्षणभंगिनि जन्तूनां स्फुरिते परिचिन्तिते ।

मूर्धाभिषेकः शान्तस्य रसस्यात्र विचार्यताम् ।।

१३. राजतरंगिणी, डॉ०रघुनाथ सिंह कृत हिन्दी अनुवाद एवं भाष्य सहित, भाग ३, पृष्ठ ४२१

१४. राजतरंगिणी, व्याख्याकार रामतेजशास्त्री पाण्डेय, पृष्ठ ३१२

१५. राजतरंगिणी, डॉ०रघुनाथ सिंह कृत हिन्दी अनुवाद एवं भाष्य सहित, भाग ३, पृष्ठ २३४

१६. राजतरंगिणी, डॉ० रघुनाथ सिंह कृत हिन्दी अनुवाद एवं भाष्य सहित, भाग १, (भूमिका से कल्हण -) पृष्ठ ४७-४८

अध्याय २

राजतरंगिणी की परम्परा

कश्मीर की राजतरंगिणी पहली बार नहीं लिखी गयी, यहां राजतरंगिणी को एक व्यापक अर्थ अथवा जातिवाचक संज्ञा में लेना चाहिए जिसका अर्थ है-राजाओं की गाथा या यशोगाथा। यहां तात्पर्य कश्मीरी राजाओं की यशोगाथा से है । कल्हण ने राजतरंगिणी के प्रथम तरंग में ऐसे उन प्राचीन ग्रन्थों का उल्लेख किया है जिसकी सहायता उसने अपने महान ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्य के लेखन में ली है । ये ग्रन्थ कश्मीर की भूमि में परम्परा से लिखे जाते रहे हैं । एक तो अति प्राचीन है - नीलमत पुराण, जिसके रचयिता नीलमुनि हैं । नीलमत पुराण को पढ़ने से लगता है कि नीलमुनि जी नाग-वंश में उत्पन्न हुए थे । राजतरंगिणी में भी इसका उल्लेख आरम्भ में ही होता है [1] ।

जैसा कि महाभारत के उल्लेख से प्रमाणित है कि पाण्डव राजा परीक्षित के समय नागवंशीय क्षत्रियों का प्रभाव बढ़ रहा था । ओर उन्होंने परीक्षित को चुनौती देकर मार डाला था । बाद में परीक्षित के पुत्र पराकमी जनमेजय ने अपने शौर्य से उनके प्रभाव को ध्वस्त कर दिया, तथा नाग-यज्ञ करके कितने नाग-योद्धाओं को जीते जी आग के हवाले कर दिया [2] ।

नीलमत पुराण से अतिरिक्त कल्हण ने अन्य ग्यारह राजाश्रित कथा-ग्रन्थों से भी अनेक जानकारियाँ अपने महान प्रबन्ध की रचना में ली थी । उनके नाम भी गिनाये हैं । कल्हण ने लिखा है कि राजाश्रित ऐसे अनेक ग्रन्थ थे जो प्रायः लुप्त होते गये, सुव्रत ने अपने प्रबन्ध में उन राज कथाओं को संक्षेप में चयनकर सुरक्षित रखा। ऐसी कथाएं पार्थिवावलि या नृपावली थी, जो लिखी जाती रहीं और लुप्त होती रहीं । कल्हण ने कविवर क्षेमेन्द्र की नृपावलि तथा हेलाराज की पार्थिवावलि का उल्लेख इस प्रसंग में किया है । पार्थिवावलि में बारह हजार श्लोक थे, जबकि राजतरंगिणी के श्लोकों की संख्या आठ हजार भी नहीं है । पार्थिवावलि की सहायता से ही पूर्वमिहिर नामक विद्वान ने लव आदि आठ राजाओं का वर्णन किया है । (यह लव रामचन्द्र के पुत्र कुश, लव से भिन्न हैं) छविल्लाकर ने भी अपनी रचना मे हेलाराज की 'पार्थिवावलि' से सहायता ली है, 'पार्थिवावलि' मे वर्णित ५२ राजाओं मे से ही वे पांच राजा-अशोक से लेकर अभिमन्यु तक है, जिनका वर्णन छबिल्लाकर करते हैं । (यह अशोक मौर्य-सम्राट अशोक से भिन्न कश्मीर के राजाओं मे है ।) प्राचीन ग्रन्थों से अतिरिक्त कल्हण ने प्रशस्ति पत्र तथा शासकीय अभिलेखों से भी भरपूर सहायता ली है । तथा तब उसने यह प्रयत्न किया कि पुरातन ग्रन्थों में जो भ्रम हो उसे निराकृत करते हुए कशमीर के राज्यतंत्रशासन एवं राजचरितों का यथा तथा वर्णन इस राजतरंगिणी प्रबन्ध मे किया जाए जिससे वह सब प्रकार से सहृदय जनों के लिए आनन्दायक हो[3]।

आगे नीलमत पुराण के अनुसार ही कल्हण कहता है कि कल्प से आरम्भ कर छह मन्ववन्तरों तक हिमालय के मध्य में समुन्द्र जल से मरा महान सतीसर था । वैवस्वत मन्वन्तर के आरम्भ

होने पर प्रजा की सृष्टिकरने वाले महर्षि कश्यप ने ब्रम्हा, विष्णु, रुद्र आदि देवों की अवतारण की उनकी सहायता से सर में रहने वाले जलोदभव नामक असुर को मार कर कश्मीर मण्डल का निर्माण किया । वितस्ता नदी का दण्ड धारणकर कुण्डरूपी छत्र लगाये सर्व प्रथम नील नाग ने इस धरती का पालन किया [4]। ऐसा लगता है कि पार्वती ने ही यहां वितस्ता नदी का रूप धारण कर लिया है, वह गुफाओं मे होकर प्रवाहित है । (गुफा में निवास है) तथा नाग इसका जल पीते हैं (नाग-गणोश जी उनका पयपान करते हैं ।) पार्वती जो वितस्ता बनी तो अब भी वितस्ता का रूप नहीं त्याग रही हैं ।

इसके अनन्तर कल्हण ने कश्मीर के प्राचीन (अथवा प्रथम) राजा गोनन्द और उसके पुत्र दामोदर का वर्णन किया है । गोनन्द ने मथुरा पर चढ़ाई की थी, वहां बहुत प्रयत्न करने पर भी वह भगवान कृष्ण के बड़े भाई बलराम से पराजित हुआ, मारा गया । तब उस का पुत्र दामोदर राजा हुआ, उसी समय गान्धार नरेश की कन्या का स्वयंवर रचा गया, वहा यादव भी गये, कृष्ण उनके नेता थे, दामोदर का यादवों से तुमुल युद्ध हुआ, किन्तु अन्त में कृष्ण ने दामोदर का सिर अपने चक्र से काट दिया । परन्तु कृष्ण ने दामोदर की मृत्यु के बाद कश्मीर पर अधिकार नहीं किया, वरस्च उसकी गर्भवती रानी का सिंहासन पर राज्याभिषेक कर दिया । कृष्ण के इस कार्य से यादव बड़े असन्तुस्ट हुए तब कृष्ण ने उनको समझाया कि पौराणिक मान्यता के अनुसार कश्मीर की धरती पार्वती का रूप है और वहां का राजा साक्षात शिव का अंश है, अतः कल्याण चाहने वाले विद्वान राजा को कश्मीर नरेश की अवज्ञा नहीं करनी चाहिए, भले ही वह दुष्ट हो -

तस्मिन् काले स्वसचिवान् सासूयान् विन्यवीवरत् ।

इमं पौराणिकं श्लोकमुदीर्य मधुसूदनः ॥

कश्मीराः पार्वती तत्र राजा ज्ञेयो हरांशजः ।

नावज्ञेयः स दुष्टोऽपि विदुषा भूतिमिच्छता ॥

(राजतरंगिणी १ । ७१-७२)

इसके अनन्तर कल्हण अपने काव्य प्रबन्ध की मूल कहानी का आरंभ करता है, उस गर्भवती रानी ने एक सुन्दर बालक को जन्म दिया, उसका नाम पितामह के नाम पर द्वितीय गोनन्द रखा गया। उसकी स्थिति महाभारत युद्ध के समय थी, क्योंकि वह राजा अभी शिशु ही था, इसलिए महाभारत युद्ध में किसी पक्ष ने उसे आमंत्रित नहीं किया, न कश्मीर राज्य ने भाग लिया। इसके अनन्तर 'लव' नामक एक तेजस्वी राजा कश्मीर का शासक हुआ। इन राजाओं के राज्यकाल के विवरण के अनुसार, महाभारत युद्ध काल के समकाल कश्मीर राज्य की प्रतिष्ठा का इतिहास बताते हुए कल्हण अपने काव्य की कहानी आगे बढ़ाते हैं। इस पर आगे प्रकाश डाला जाएगा।

प्रबन्ध-रचना का कवि का उद्देश्य

यह प्रबन्ध- काव्य कल्हण किस उद्देश्य से लिख रहे हैं, इस पर विचार करना बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न है। इस प्रश्न के उत्तर में ही राजतरंगिणी की परम्परा का मूल भी उद्घाटित होगा।

प्रथम तरंग के आरम्भ में कवि ने अपनी काव्य-रचना का उद्देश्य दो तरह से व्यक्त किया है - एक तो यह है कि वह इस कवि-कर्म द्वारा अपनी (स्वस्य) तथा राजा (परस्य) की कीर्ति

को अमर करना चाहता है। कवि की विशेषता यह है कि वह बीते हुए काल (इतिहास) को वर्तमान के समान प्रत्यक्ष दर्शन करा देता है। [5] और दूसरा उद्देश्य जो मुख्य है, किन्तु सामान्य है। अर्थात् वह राजाओं के उत्थान-पतन की कहानी कहना चाहता है। राजाओं के शासन - काल की जो भ्रमात्मक बातें अन्य ग्रन्थों में कही गयी है, कल्हण इनको सत्य रुप में उपस्थित करना चाहता है, और यह भी कहता है कि प्राचीन काल के व्यवहारों को मैंने इतने सुन्दर ढंग से वर्णन किया हे कि प्रत्येक सहृदय इसको पढकर आनन्द प्राप्त करना चाहेगा। सब मिलकर राजतरंगिणी कश्मीरी राजाओं के अभ्युदय और अपकर्ष की कहानी मात्र है -

इयं नृपाणामुल्लासे ह्रासे वा देशकालयोः ।

भैषज्यभूत संवादिकथा युक्तो युज्यते ।।

संक्रान्त प्राक्तनानन्त व्यवहाराः सुचेतसः ।

कस्येदृशो न सन्दर्भो यदि वा हृदयंगमः ।।

(राज० तरंग १। २१-२२)

परन्तु इस कहानी में कहीं कहीं कवि को इतने निम्नकोटि के आचरणों की कथा कहनी पड़ी है कि कवि की सरस्वती पापपूर्ण कथा के स्पर्श से त्रस्त और गति शून्य हो जाती है तब कवि अपनी सरस्वती को आगे ऐसे ही गतिमती बनाता है जैस डरी हुई घोड़ी को आगे बढाया जाता है। [6]

कल्हण की 'राजतरंगिणी' के पूर्व भी नृपावलि या पार्थिवावलि लिखी गयी होगी, उनके वर्णन भी ऐसे ही रहे होंगे। राजाओं के उत्थान - पतन, काम लोलुपता, अनाचार की ऐसी कहानियाँ, जो एक छोटे से देश प्रदेश मात्र कश्मीर की हो, जिनमें लोक - जीवन के दुःख, सुख तथा जीवन की कोई चाह न हो, उनको कोई क्यों पढ़ना चाहेगा, राजा के राजभवन के अभिलेखागार मे ही वे सुरक्षित रखी जा सकती हैं, और वह भी उनके राज्यकाल तक। अन्यथा उनको नष्ट ही हो जाना होता है। कल्हण के पूर्व के लिखे ग्रन्थ इसीलिए लुप्त हो गये। नीलमत पुराण आज भी है, क्योंकि वह राजाओं के उत्थान - पतन की कहानी नहीं है, वह कश्मीर देश का भूगोल है, कश्मीर भूमि की प्रतिष्ठा की प्रेरणाप्रद कहानी है, उसमें धरती का पुरा इतिहास है।

कल्हण की राजतरंगिणी ने भी पूर्व ग्रन्थों की अपेक्षा अमरता और लोकप्रियता प्राप्त की, उसका कारण कश्मीरी राजाओं की कथा नहीं है, उसका जबर्दस्त कारण है - कवि कल्हण की सरस्वती का अविच्छिन्न निर्मल अमृत प्रवाह, भले ही उस प्रवाह में कल्पद्रुम के फूल या फल न बह रहें हो, झरबैले या इन्द्रान के विषैले फल कहे जा रहे हों। 'राजतरंगिणी' में कविता की उज्ज्वल ज्योति प्रकाशित है, अफसोस है कि उस प्रकाश में कुछ अच्छा दृश्य नहीं है - अनाचार, लूट तथा कामुकता की कहानी अधिक है।

राजतरंगिणी लिखने का यह उद्देश्य बहुत संकुचित या हीन है, यही कारण है कि इन कथाओं का कोई महत्व भारत या उत्तर भारत या कश्मीर भूमि के ही समाज में नहीं रहा। कल्हण के

परवर्ती किसी कवि ने राजतरंगिणी में वर्णित राजा के चरित्रों मे किसी भी चरित्र को लेकर कोई काव्य, नाटक या चम्पू की रचना नही की है।

बात यहीं तक नहीं है। कल्हण की प्रबंध रचना का उद्देश्य भारतीय साहित्य परंपरा के लेखन में कहीं से भी मेल नहीं खाता। वाल्मीकि रामायण, महाभारत, रघुवंश, हर्षचरित अथवा कहॉ तक कहे गुणाढ्य के बृहत्कथा लिखने के उद्देश्य राजतरंगिणी के प्रवंध रचना के उद्देश्य से अति महान है, इसीलिये ये ग्रन्थ बहुत लोकप्रिय रहे, भारतीय लोकजीवन को इन्होंने अतीत में बड़ी प्रेरणाएं दी है।

कुछ संक्षेप में इन पर विचार किया जाता है तथा उसी परिप्रेक्ष्य में इस बात के अनुसंधान का प्रयत्न है कि आखिरकार 'राजतरंगिणी' लेखन की यह परंपरा कहॉ से जुड़ती है।

जैसा कि कहा गया है कि कल्हण के काव्य प्रबंध रचना का उद्देश्य कहीं भी लोक कल्याण से नहीं जुड़ता, वह केवल कश्मीर के राजाओं की कहानी चाहे वह अच्छी हो या खराब, सच सच कहने के लिये प्रतिज्ञा करता है। कश्मीर उसकी जन्म भूमि है और उसके पिता चंपक कश्मीर नरेश हर्ष के प्रिय अमात्य रहे है, अतः उसका कश्मीर (काश्यपी भूमि) से हार्दिक लगाव है।

इसकी तुलना में संस्कृत के प्रसिद्ध प्रबंध काव्यों को देखा जाय तो उनकी रचना के लक्ष्य कितने महान है। आदि काव्य वाल्मीकि रामायण के रचयिता महर्षि वाल्मीकि ने रचना के आरम्भ में नारद से जो प्रश्न किया है उस प्रश्न में उनकी लोक कल्याण के प्रति व्यापक दृष्टि है और

वही उनकी रचना का उद्देश्य भी है जो वे एक महान लोकोत्तर पुरुष के बारे में जानकारी चाहते है, नारद से वाल्मीकि का प्रश्न है -

कोन्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवनुकश्च वीर्यवान् ।

धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः ।।

चारित्र्येण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः ।

विद्वान् कः कः समर्थश्च कस्यैकप्रियदर्शनः ।।

आत्मवान् को जितक्रोधो द्युतिमान् कोऽनसूयकः ।

कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे ।।

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे ।

महर्षे त्वं समर्थोऽसि ज्ञातुमेवं विधं नरम् ।। [7]

अर्थात् हे महर्षि नारद ! मैं आप से सुनना चाहता हूँ कि इस समय लोक में वह कौन है जो गुणवान् है, बलवान् है, धर्मज्ञ है, सत्य बोलने वाला है, दृढ़व्रत है, कृतज्ञ है, चरित्र से युक्त है, सभी प्राणियों का हित चाहनेवाला है, विद्वान है, समर्थ है, सब को प्रिय लगने वाला है, आत्मवान है, क्रोधजयी है, तेजस्वी है, किसी से असूया नहीं रखता, वह कौन है जिसके युद्ध में रोष आने पर देवगण भी कॉपते हैं, आप इस प्रकार के पुरुष को जानने में समर्थ हैं, मुझे अत्यन्त कौतुक है कि आप ऐसे पुरुष का परिचय मुझे बताइए।

नारद ने वाल्मीकि से दशरथपुत्र राम का परिचय उनके शौर्य, औदार्य तथा त्याग के साथ बताया। संक्षेप में उनकी पूरी कहानी बताई। वाल्मीकि ने ऐसे लोकहितकारी तथा लोक के लिए आदर्शचरित राम के जीवन को लेकर अपने अमर प्रबंध काव्य की रचना की।

व्यास रचित महाभारत के समबन्ध में कुछ कहना ही नहीं है, जिसको लोगों ने सदा सुना, सुन रहे हैं और आगे भी सुनेंगे -

आचख्युः कवयः केचित् सम्प्रत्याक्षते परे ।

आख्यास्यन्ति तथैवान्ये इतिहासमिमं भुवि ।। [8]

वह ज्ञान विज्ञान का भण्डार है -

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ ।

यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित् ।। [9]

इस जातीय महाकाव्य-प्रबन्ध की रचना वेदव्यास ने लोक के हित, उत्थान तथा जीवन की समग्रता प्राप्त करने के लिए की थी -

पुराणसंहिताः पुण्याः कथा धर्मार्थ संहिताः ।

इतिवृत्तं नरेन्द्राणमृषीणां च महात्मनाम् ।।

तपसा ब्रह्मचर्येण व्यस्य वेदं सनातनम् ।

इतिहासमिमं चक्रे पुण्यं सत्यवतीसुतः ।।[10]

'कालिदास' का रघुवंश महाकाव्य रामायण-महाभारत के समान ही भारतीय परम्परा का लोकप्रिय अमर महाकाव्य है, कवि ने रघुवंश महाकाव्य की रचना का अपना महद् उद्देश्य प्रकट रूप से बखान किया है, जो एक तरह से लोक के आदर्श और हित के लिए ही है, रघुवंश के आरम्भ में ही कवि ने कहा है -

सोऽहमाजन्मशुद्धानाम् आफलोदयकर्मणाम् ।

आसमुद्रक्षितीशानाम् आनाकरथवर्त्मनाम् ।।

यथाविधिहुताग्निनां यथाकामार्चितार्थिनाम् ।

यथापराधदण्डानां यथाकालप्रबोधिनाम् ।।

त्यागाय संभृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम् ।

यशसेविजिगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनाम् ।।

शौशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम् ।

वार्धक्ये मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम् ।।

रघूणामन्वयं वक्ष्ये तनुवाग्विभवोऽपि सन् ।

तद्गुणैः कर्णमागत्य चापलाय प्रचोदितः ।।[11]

मैं मन्द कवि (कालिदास) उन रघुवंशियों के कुल का काव्यगान करने जा रहा हूँ जो जन्म से संस्कार सम्पन्न रहे है, जो किसी कर्म का आरम्भ कर उसे समाप्त कर (फल तक पहुँचा कर) ही विराम लेते हैं। सुमुद्र तक की धरती पर जिनका राज्य है, इन्द्र लोक तक जिनके रथ जाते है, जो विधि पूर्वक अग्नि में हवन करते है, अतिथियों का भली भाँति सत्कार करते हैं, जो अपराध के अनुसार दण्ड देते हैं, यथा समय जिनको अपने कर्तव्य का बोध रहता है, त्याग के लिये ही जो धन इकट्ठा करते है, सच वोलने हेतु जो कम बोलते हैं, यश के लिये ही जो विजय करते है, सन्तान के लिये जो गृहस्थ बनते है, शैशव काल में जो विद्या का अभ्यास करते है, युवाकाल में ही जो विषय की कामना करते है, वृद्धावस्था में जो मुनि सा जीवन व्यतीत करते हैं और अन्त में योग से अपना शरीर त्यागते हैं। मेरे पास कवि की वैसी प्रतिभा नहीं है, मन्द कवि हूँ तो भी कान से मैने उन रघुकुल राजाओं का शौर्य सुना और काव्य प्रवन्ध रचने की यह ढिटाई करने जा रहा हूँ।

रघुवंश के प्रथम सर्ग में ही आगे भी कालिदास ने राजा दिर्लीप के शारीरिक सौन्दर्य तथा उनके गुणों का वर्णन करते हुए जैसे अपनी काव्य - रचना का लोक हितैषी उद्देश्य प्रकट कर दिया है।[12] यही नहीं, जो दूसरे भी गद्य या पद्य के प्रबन्ध कवियों ने रचे है उनमे लोकहित, आदर्श और त्याग आदि लोकोपकारक गुणों की स्थापना उनका अत्यन्त प्रकट उद्देश्य रहा है। पुराण के उद्‌गाता भी पुराण रचना का यही उद्देश्य वर्णन करते है।[13]

प्रत्येक पुराण के अन्त में उसके उद्देश्यों की प्रशस्ति अवश्य गायी गयी है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थो की सिद्धि तथा लोक हित की कामना उनके उद्देश्य है।

राजतरंगिणी की प्रबंध रचना मे लोकहित की कामना लक्ष्य नहीं है, कृतिकार केवल राजाओं का इदमित्थम् जो कुछ अच्छा बुरा है उनका सच सच इतिहास कहना चाहता है। और वह सच सच कहानी राजचरित का अच्छा बुरा गुणगान मात्र है, जिसमें लोक के लिये अनुकरणीय कुछ भी नहीं है। राजतरंगिणी की समाप्ति पर कल्हण ने उपसंहार के रूप में केवल एक छंद लिखा है, उस छंद का भाव यही है जो अभी ऊपर कहा गया है -

गोदावरी सरिदिवोत्तुमुलैस्तरंगै

वक्त्रैः स्फुटं सपेदि सप्तभिरापतन्ति ।

श्री कान्तिराज विपुलाभि जनाब्धिमध्यं

विश्रान्तये विशति राजतरंगिणीयम् ।।

(राज० तरंग ८।३४४६)

अर्थात् जैसे गोदावरी नदी अपनी तुमुल तरंगो वाली सात धाराओं से बहती हुई विश्राम के लिये समुद्र में प्रवेश करती है वैसे ही यह राजाओं की नदी रुपी कथा राजतरंगिणी अपने पूर्व की सात तरंगों के साथ श्री और कान्ति से युक्त राजाओं के विस्तृत कुल रुपी समुद्र में अथवा

कान्ति राज के कुल में विश्रान्ति हेतु प्रवेश कर रही है। कवि का भाव है कि उसकी राजतरंगिणी कश्मीर के राज कुल को समर्पित हो रही है।

राजतरंगिणी की परंपरा कहाँ से आयी है -

कल्हण का ह्दय राजाओं का चरित्र लिखने के लिये बहुत भावाकुल है, राजा का वह चरित्र चाहे प्रशंसनीय हो या निन्दनीय हो। उसे बड़ा पश्चाताप है कि ५२ राजाओं के नाम तथा उनके चरित्र का कोई पता नहीं है और यह राजाओं का ही दुर्भाग्य है कि उनके युग में कवि नही हुए जो उनके चरित्र का गान करते। इन ५२ राजाओं का समय कल्हण के अनुसार ईसा से दो हजार वर्ष पूर्व रहा होगा। वह समय संस्कृत साहित्येतिहास के नवीन चिन्तन के अनुसार संस्कृत काव्य रचना में जातीय काव्य धारा के प्रवाह का समय था। जो भी कोई कवि हुआ उसने रामायण और महाभारत के आते हुए स्वच्छ तरल प्रवाह में, किसी प्रसंग के माध्यम से अपनी लघु काव्य निर्झरणी का भी संगम करा दिया।[14] जातीय काव्य धारा मानवता की शक्ति और समृद्धि का पवित्र संगम था। कल्हण जिस कवि- कर्म की चर्चा करते है वह न तो जातीय काव्य धारा का पवित्र प्रवाह है और न ही सहज काव्य-धारा की आनन्दमयी भाव तरंगिणी है। कल्हण की कृति केवल राजाओं का चरित प्रबंध है।

ऊटक - नाटक, दुर्व्यसनी विलासी तथा प्रजापीड़क राजाओं की ऐसी चरितावली भारतीय काव्य रचना की परंपरा के विरुद्ध है। फिर प्रश्न उठता है कि राजतरंगिणी की यह परंपरा कहाँ से अनुस्यूत है? कल्हण ने राजतरंगिणी में ऐसे राजाओं का चरित गाया है जो छल कपट पूर्वक

राज्य प्राप्त करते है धोखे से दूसरो की हत्या करते है, दूसरे की सुन्दर स्त्री को अपनी प्रेयसी बना कर ही चित मे शान्ति पाते है[15]।

राजा हर्ष का लम्बा चरित कल्हण ने लिखा है, हर्ष के यहाँ कवि के पिता चंपक मंत्री थे हर्ष का चरित ऐसा है कि वह इस्लाम का नारा बुलंद करते हुए आक्रमक लुटेरों को भी मात कर देता है, उसने धन के लिये मंदिरों को लूटा, मूर्तियों को धन की खोज मे तोड़ा, धातु की मूर्तियाँ रस्सियों से बांध कर सड़क पर घसीटी गयीं।[16] कल्हण ने हर्ष को उसके इन कारनामों से तुरुष्क राज कहा है -

ग्रामे पुरेऽथ नगरे प्रासादोंन स कश्चन ।

हर्ष राज तुरुष्केण न यो निष्प्रतिमीकृतः ।।

(७ । १०६५)

अर्थात् गाँव, पुर या नगर के ऐसा कोई प्रासाद नहीं था, जहाँ की देवप्रतिमा तुर्कराजाओं के समान हर्ष ने नष्ट न कर दी हो।

कल्हण ने हर्ष की समानता तुर्क राजा से कर सम्भवतः इस राजगाथा (राजतरंगिणी) की मूल परंपरा को समझने का एक सूत्र प्रदान किया है। यह पीछे स्पष्ट किया जा चुका है कि यह राजतरंगिणी पहली बार नहीं लिखी गई, कल्हण के पूर्व भी नृपावली, पार्थिवावली लिखी जा चुकी है। यह उन राजाओं की, या उस जाति के राजाओ की जीवन कहानियाँ है, जो अपने सुख, विलास तथा ऐश्वर्य को आगे रखकर देश जीता करते थे, जीता क्या करते थे लूट लिया

करते थे, कालिदास के नायकों की तरह वह यशसे विजिगीषूणाम (रघुवंश १। ७) नही होते थे, कश्मीर राजाओं का यह राजवंश या तो पुरातन नागराजाओं का वंश धर था अथवा मध्यकाल के पूर्व मध्य एशिया से निकलकर यूनान, यूरोप, चीन तथा भारत भूमि पर बर्वर आक्रमण करने वाले तथा लूटपाट करने वाले हूण जाति की विभिन्न शाखाओं का वंशधर था, यद्यपि कल्हण कश्मीर राजवंश का इतिहास युधिष्ठिर के काल से जोड़ता है लेकिन वह स्वयं जिस राजवंश की छाया मे रहा है, उसके पिता चम्पक रहे है। तथा उसके पूर्ववर्ती क्षेमेन्द्रादि कवि और विद्वानों ने उनकी नृपावलियॉ लिखी है, ये राजवंश युधिष्ठिर के काल से नहीं चले आ रहे है। इन राजवंशो का सम्बन्ध हूण कुलों से ही है, जो छठी शती ईस्वी मे यशोधर्मा के अभ्युदय से पूर्व यहॉ अपना राज्य स्थापित कर चुके थे, उनका राज्य वर्तमान पंजाब और हिमालय की घाटी कश्मीर में ही था, यशोधर्मा ने उनको पराजित कर उनके राजा मिहिरकुल को हिमालय के गढ़ में भगा दिया, पकड़ कर अपने चरणों पर झुकाया। तब उसने अपनी हार की ग्लानि से आत्महत्या कर ली।[17] हूणों का वही सामन्तकुल बाद की शताब्दियों में दूसरे राजकुलों के नाम से कश्मीर का शासक बना। कश्मीर के राजा, कल्हण की राजतरंगिणी मे जिनका चरित है, अपने उच्छृंखल चरित्रों से हूणों के वैसे कारनामों की याद दिलाते हैं । मध्य एशिया के हूण सामन्त ने अपने शत्रु को मारकर उसका शिर काटा और उसकी खोपड़ी मे मदिरा - पान किया तब उसे तृप्ति हुई। काम - सम्बन्धों की कोई मर्यादा उनके स्त्री पुरुषों मे नही थी राजतरंगिणी की छटी तरंग मे दिद्दा रानी का ऐसा ही चरित्र है, जो प्रकट रूप से अपने संभोग के लिए नये - नये युवकों को बुलवाती थी। बाद में खश जाति के तुंग नामक युवक को अपना पति ही बना लिया।[18]

5-6-2008

हूणों की उस जाति ने बाद में इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया।, उसके ही वंशज चंगेज, तैमूर और बाबर है। उन्होने अपनी प्रशंसा और अपने कारनामों का ब्यौरा देने के लिए स्वयं ही अपनी आत्म कथा लिखी है, जिनके नाम है - तुजुक ए तिमूरी, तुजुक ए बाबरी। तुजुक का अर्थ चरित या कथा है। इनकी कथाओं में कहने या न कहने योग्य सभी बाते आयी है। इन दोनो ग्रन्थों में अपनी विजय से अतिरिक्त ऐसे भी कथानक है जैसे राजतरंगिणी मे है। बाबर अपने बाबरनामा (तुजुक ए बाबरी) में लिखता है कि द्वाबा में विद्रोह करने वाला पकड़ा गया, संझा को उसे पेश किया गया, हुक्म दिया गया, पहले उसकी खाल उतरवा ली जाए फिर उसका शिर कलम कर दो।[19] इस प्रकार के घटना-विवरण राजतरंगिणी में कई-एक हैं।

कल्हण भी इतिहास कम, राजाओं का चरित ज्यादा लिख रहा है, जो बातें लिखने से रह गयी हैं उनको सुधार रहा है, उनकी अच्छी बुरी कथा लिख रहा है -

दृष्टं दृष्टं नृपोदन्त बद्ध्वा प्रमयमीयुषाम् ।

अर्वाकक्कालभवैर्वार्ता यत्प्रबन्धेषु पूर्यते ।।

दाक्ष्यं कियदिदं तस्मागास्मिन् भूतार्थ वर्णने ।

सर्वप्रकारं स्खलिते योजनाय ममोद्यमः ।। [20]

अर्थात् पूर्वकाल के प्राचीन कवियों ने भलीभाँति विवेचन कर राजाओं का जो इतिहास लिखा

है उसमें नया कवि उससे अधिक क्या पूर्ति करेगा। किन्तु मेरा यह उद्यम (प्रयत्न), जो कुछ स्खलित रह गया है, उसके सुधारने के लिए भी है।

जो भी हो, राजाओं के अच्छे बुरे चरित का सम्पूर्ण अभिलेख निबद्ध करने की यह परम्परा भारतीय (आर्य जातीय) कवियों की नहीं है, राजतरंगिणी में चरित्रों के ऐसे घृणास्पद प्रसंगों को भी निबद्ध किया है जिससे राजाओं की इस तरंगिणी का जल दूषित होता है, पर कवि उसे निबद्ध करता है, उसकी मजबूरी है, ऐसा न करने पर उसको अपना प्रबन्ध ही अधूरा लगेगा। इन मध्य एशिया की जाति के राजाओं का अहं तब तुष्ट होता है जब उसके अच्छे-बुरे सभी कर्म उसकी कीर्ति के ही अंग मानकर गाये जाये। कश्मीर के अथवा कल्हण की राजतरंगिणी के अधिकांश राजा ऐसै ही अच्छे-बुरे कर्मों की कीर्ति वहन करते हैं। राजतरंगिणी की परम्परा का उद्गम कुछ ऐसे ही अन्तराल की घाटी से हुआ। उसे हम तुजुक ए तीमूरी और तुजुक ए बाबरी के निकट पाते हैं।

इतिहास-रस के प्रबन्ध

संस्कृत-साहित्य के इतिहासकारों ने इसकी ऐतिहासिक प्रबन्ध मान कर इसकी अत्यधिक प्रशंसा की है। इसमें सन्देह नहीं है कि इतिहास की कई बातें तथा कई संस्कृत कवियों और विद्वानों के सम्बन्ध में प्रामाणिक सूचनाएं इस ग्रन्थ में निबद्ध है, और कश्मीर के राजाओं एवं वहां के नागरिकों, विशेषतः ब्राह्मणों-कायस्थों के सम्बन्ध में उनके गुण-दोषों का निष्पक्ष निरूपण कल्हण ने किया है। यह उसके ऊँचे व्यक्तित्व और उस विद्वत्ता का परिचायक है तथा सबसे अधिक

यह प्रबन्ध एक समर्थ कवि की कृति है, कल्हण का कवित्व ही राजतरंगिणी की अमरता का कारण है, उसमें निबद्ध राजाओं का चरित तो ऐसा है कि उसे कोई पढ़ने की भी इच्छा न करे। कल्हण ने पूरे प्रबन्ध में एक ऊँचे कवि का कृतित्व प्रत्यक्ष किया है। उसने घटनाओं के अन्तराल को यत्र तत्र सर्वत्र मार्मिक उक्तियों और नीतिगत सूक्तियो से सुषमा मंडित कर दिया है।

राजतरंगिणी में कुल पॉच से अधिक राजवंशों का वर्णन आता है। तीसरी तरंग तक गोनन्दवंश का वर्णन चौथी तरंग में कर्कोटक वंश का, पंचम तरंग में उत्पल वंश का, षष्ठ तरंग में अन्य कुलों का, सप्तम तरंग तथा अष्टम तरंग में लोहर वंश (सातवाहन वंश) के राजाओं का वर्णन किया गया है। अष्टम तरंग सम्पूर्ण प्रबन्ध का आधा भाग है, वह कवि का वर्तमान है अतः उसका विस्तार से वर्णन होता है। पर ये सभी राजवंश अपने कर्तव्य और प्रभाव में कश्मीर तक ही सीमित हैं।

जिसे प्रबन्ध ध्वनि अथवा प्रबन्ध वक्रता कहेंगे, अथवा संम्पूर्ण प्रबन्ध की परिणति की संज्ञा दी जाय बह यह है कि यह सारा प्रबन्ध अन्त में, राजाओं के चंचल चरित, विनाश तथा विभव की क्षणभंगुरता की वेदनाओं की समाकुलता से, निर्वेदभाव (शान्त) रस में समाप्त होता है - ऐसी मान्यता इस ग्रन्थ के मान्य अध्येताओं ए०वी०कीथ, डॉ० रघुनाथ सिंह जैसे विद्वानों की है, उन्होंने अपने ग्रन्थों में इस अभिमत पर प्रकाश डाला है[21] तथा स्वयं कल्हण भी प्रथमतरंग में इस कृति को शान्त रस का काव्य-प्रबन्ध स्वीकार करता है -

क्षणभंगिनीजन्तूनां स्फुरिते परिचिन्तिते ।

मूर्धाभिषेकः शान्तस्य रसस्यात्र विचार्यताम् ।।

(तरंग १ । २३)

पर जैसा कि हम प्रकृत प्रवाह में देखते हैं, ऊपर की बातें सत्य होने पर भी कवि के प्रबन्ध की समाप्ति पर लिखे दोनें छन्दों के ये वाक्य -

नन्दयन्मेदिनीमास्ते जयसिंहो महीपतिः ।। ३४४८

अभिजनाब्धिमध्यं

विश्रान्तये विशति राजतरंगिणीयम् ।। ३४४९

उसके इस राजतरंगिणी प्रवन्ध को इतिहास रस में निमज्जित करते हैं, पूरा प्रबन्ध इतिहास रस का ऐसा सरोवर है जो काल की अतीत स्वप्निल पहाड़ियों के बीच लहरें मार रहा है, कथा शैवाल तथा मानव मन के भाव जलजीवों से ओतप्रोत भी हैं, पीनें में आनन्ददायी है, अवगाहन करने में वितृष्णा भी करता है। काव्य की दृष्टि से प्रबन्ध इतिहास रस का है।

ए०बी०कीथ ने इसकी ऐतिहासिकता की बड़ी प्रशंसा की है, लिखते हैं "उनके ग्रन्थ में भूरिश पाये जाने वाले पवित्र इमारतों, भूम्यनुदानों इत्यादि के सम्वन्ध में उनके विलकुल ठीक कथनों से, जो बड़े महत्व के हैं, उपर्युक्त दावे की पुष्टि की जीती है, उन्होंने सिक्कों का अध्ययन और इमारतों की निरीक्षण भी किया था, साथ ही वे स्पष्टतः कश्मीर की घाटी के स्थानों के

विवरण के पंडित थे । इसके अतिरिक्त, उन्होंने प्रत्येक प्रकार की स्थानीय अनुभूतियों का और तत्तद वंश-सम्बन्धी लेखकों का खुली रीति से उपयोग किया था । मात ही उन्होंने अपने ग्रन्थ के समय से पहले के पचास वर्षों की घटनाओं के वर्णन में अपेक्षित छोटे से छोटे विवरणों को भी स्वयं अपनी और अपने पिता तथा अनेक दूसरे लोगों की जानकारी में एकत्र किया है।"[22]

यह बाते तो सत्य हैं, पर यह सारी खोजबीन और जानकारीराजाओं के कार्य-कलापों तथा उनके उत्थान पतन की जानकारी तक ही सीमित है, वह भी केवल कश्मीर भूमि में । एक तरह से कल्हण की यह सारी ऐतिहासिक प्रबन्ध-पटुता एकांगी हो गयी है, वह केवल राजाओं कीनदी के किनारे खड़ा है, नदी से अनतिदूर जो समाज और संस्कृति के उमड़े हरे कान्तार हैं, उनकी खबर वह नहीं लेता, न उनका वर्णन करता है । उसकी दृष्टि में अभिनव गुप्त जैसे महामहेश्वर की

शैव दार्शनिक धारा का इतिहास क्या है, उसकी कोई चमक नहीं कौंधती । कश्मीर का समाज कुछ अपना भी अस्तित्व रखता है, या सर्वथा राजा का जीवन ही उसका भी जीवन है, सामान्य प्रजा की जीवन और उसकी जीविका क्या है, वह कुछ नही लिखता, कदाचित जानता भी न हो ।

ए०बी०कीथ ने अपने "हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर" ग्रन्थ मे कल्हण के इस प्रबन्ध की बाण के हर्षचरित से तुलना करने की बात कही है- "बाण के हर्षचरित और बिल्हण की कविता

के साथ तुलना करने पर कल्हण के स्वयं अध्यारोपित उक्त समय को हम बहुत अच्छी तरह समझ सकते हैं "[23]।

ऐसा कहते हुए कीथ कल्हण की अतिशय प्रशंसा मे बाण के "हर्षचरित" की सच्ची ऐतिहासिकता की उपेक्षा कर रहे हैं । बाण का हर्षचरित उसके समकाल का समग्रवर्णन है-- राजा का, ब्राह्मण का, गुरुकुलों का, नीचोच्च सभी समाजों का, जंगल के किसानों का, गांव के किसानों का, चरागाहों का, वनों, ऋतुओं प्राकृतिकसुषमाओं का, राजा की सेना तथा सेना के प्रयाण काल के दृश्यों, मंत्रि परिषद का, रागअनुराग की युवा-युवतियों की ललित परिस्थितियों का आदि आदि, और जो कुछ भी है इतना समग्र है कि कोई कोना छूटा नही है । सातवीं सती के भारतीय समाज और संस्कृति का जितना विपुल विस्तृत वहुरंगी चित्र हर्षचरित में प्राप्त है, किसी ग्रन्थ में किसी काल का इतना विस्तृत इतिहास हमें प्राप्त नहीं है । सम्पूर्ण राजतरंगिणी इसके एक उच्छवास की तुलना मे भी लघु लगती है ।

"राजतरंगिणी" के विशिष्ट अधयेता डा० रघुनाथ सिंह ने कल्हण के भौगोलिक ज्ञान की बड़ी प्रशंसा की है-- " भारतीय पुराकालीन लेखकों में कल्हण सब से अधिक सच्चा भौगोलिक स्थिति का वर्णन करता है भारत के क्षेत्रों का इस प्रकार सर्वागीण ज्ञान किसी रचनाकार ने उपस्थित नहीं किया है उसके सिन्धु तट कालिन्दीपुलिन (रा०१ ६०) का वास्तविक रूप प्रस्तुत किया है"[24]।

ऐसा लिखना कोरी अत्युक्ति है । वाल्मीकि रामायण, विष्णुपुराण, मेघदूत, हर्षचरित और

कल्हण के पूर्ववर्ती कल्हण के विक्र मांकदेव चरित– ये सभी प्रवन्ध राजतरंगिणीगर से अधिक भूगोल का सद्या विवरण प्रदान करते हैं ।

केवल राजाओं का इतिहास

राजतरंगिणी अमर काव्य-प्रबन्ध है । पर उसकी ऐतिहासिकता एकांगी है, वह केवल राजाओं का इतिरास है, कश्मीर के सामान्य नागरिक के समाज और संस्कृति का उसमे दर्शन नहीं है । राजाओं का ऐसा भी इतिहास है जो गर्हित है, जिसे लिखे जाने की कोई आवश्यकता नहीं है, पर वह ऐसी कुल परम्परा के राजाओं का इतिहास है जो अपना अच्छा-बुरा सब कुछ या तो स्वयं लिखते थे या अपने सभा-सभ्य कवि से लिखवाते थे । इसीलिए यह भारतीय परम्परा का ऐतिहासिक प्रबन्ध नहीं कहा जा सकता।

संदर्भ

१ नीलमतपुराण श्लोक २१६-२२०

एवमुक्तस्तदा नीलः पितरं प्राह धार्मिकः ।

नित्यमेव हि वत्स्यामो मानुषैः सहिता वयम्

न पिशाचैश्च वत्स्यामो दारुणै दइणि प्रियैः ।

एवं बुवति नागेन्द्रे नीले विष्णुरभाषत ।।

तथा श्लोक २३१-२३२

ममांशः स तु नागेन्द्र नागानामश्वरेश्वरः

तस्याज्ञां विफलां कुर्वन् मम् हस्ताद् विनश्यति ।।

नागानामालयं नाग नाम्रा भोगवतीपुरी ।

योगी भूत्वा स नागेन्द्रस्तत्रेहापि कृतालयः ।।

राजतरंगिणी तरंग १ । २८

उद्यद वैतस्त निःस्यन्द दण्ड बुण्डातपत्रिणा ।

यत्सर्व नागाधीशेन नीलेन परिपाल्यते ।।

२. महाभारत आदिपर्व, अध्याय ६०

३. राजरंगीणी प्रथम तरंग । श्लोक २१ - २२

इयं नृपाणामुल्लासे ह्रासे वा देशकालयोः ।

भैषज्य भूत संवादिकथा युक्तोपयुज्यते ।।

संक्रान्त प्राक्तनानन्त व्यवहारः सुचेतसः ।

कश्येध्शोसन्दर्भो यदि वा हृदयंगमः ।।

४. राजतरंगिणी १ । २५ - २८

पुरा सतीसरः कल्पारंभात् प्रभृति-भूर भूत् ।

कुक्षौ हिमाद्रेरर्णोभिः पूर्णा मन्वन्ताराणि षट् ।।

अथ वैवस्तीयेऽस्मिन्प्राप्ते मन्वन्तरे सुरान् ।

द्रुहिणोपेन्द्ररुद्रादीन् अवतार्य प्रजासृजा ।।

कश्यपेन तदन्तः स्यं घातयित्वा जलोद्भवम् ।

निर्ममे तत्सरो भूमौ कश्मीरा इति मण्डलम् ।।

तुलनीय, नीलमत पुराण १२, १३, २२८

यैव देवी उमा सैव कश्मीरा नृप सत्तम ।

आसीत् सरः पूर्ण जलं सुरम्य सुमनो हरम् ।। १२

कल्पारम्भप्रभृति यत् पुरा मन्वन्तराणि षट् ।

अस्मिन् मन्वन्तरे जातम विषयं सुमनोहरम् ।। १३

यैवोमा सैव कश्मीरा यस्मात्तस्माद् भुजंगम ।।२२८

५. राजतरंगिणी तरंग १ । ३ - ४

वन्द्यः कोऽपि सुधास्यन्दास्कन्दी स सुकवेर्गुणाः ।

येनायाति यशःकाय स्थैर्य स्वस्य परस्य च ।।

कोऽन्यः कालमतिकान्त नेतुं प्रत्यक्षतां क्षमः ।

कवि प्रजापती स्त्यस्क्त्वा रम्यनिर्माणशालिनः ।।

६. राजतरंगिणी तरंग ५ । ४१६

स्थगिता तत्कथापापस्पर्शभीत्या सरस्वती ।

कथंचिन्त्रन्सरश्वेव सेयं प्रस्थाप्यते मया ।।

७. वाल्मीकिरामायण बालकाण्ड १ । २ - ५

८. महाभारत आदिपर्व, अध्याय १ । २५

९. महाभारत आदि पर्व, अध्याय ६०

१०. महाभारत आदि पर्व अध्याय १ । २७, ५४

११. रघुवंश १ । ५ - ६

१२. रघुवंश १ । १२ - २६

१३. ब्रह्मपुराण अध्याय २४५ । २६, ३२

इदं यशस्यमायुष्यं सुखदं कीर्तिवर्धनम् ।

बलपुष्टिप्रदं नृणां धन्य दुःस्वप्न नाशनम ।।

जाति स्मरत्वं विद्यां च पुत्रान् मेधा पशून धृतिम् ।

धर्म चार्थ च कामं च मोक्षंतु लभते नरः ।।

अग्निपुराण अध्याय ३८२ । ६४ - ६५

इदं पञ्चदश साहस्रं शतकोटि प्रविस्तरम ।

देवलोके देवतैश्च पुराणं पठयते सदा ।।

लोकानां हितकाम्येन संक्षिप्तोद्गीतमग्निना ।

सर्व ब्रह्मेति जानीध्वं मुनयः शौनकादयः ।।

१४. द्रष्टव्य, विस्मयके विकल्प (ले०- डा० जय शंकर त्रिपाठी)ग्रन्थ मे 'संस्कृत साहित्य रचना का काल - विभाजन' शीर्षक निवन्ध जिसमें संस्कृत काव्य की जातीय काव्य धारा तथा सहजकाव्य धारा का नया विवेचन किया गया है। पृ० १८० -२०२

१५. राजतरंगिणी तरंग ४ । १७ - ३७

१६. राजतरंगिणी, तरंग ७ । १०९० - ११००

स्वर्णारूप्यादि घटिता गीर्वाणाकृतयोऽलुठन्

अध्वस्विन्धनगण्डाल्य इव साव स्करेष्वपि ।। १०९३

विबुधप्रतिमाश्चक्रुराकृष्टा गुल्कदामभिः ।

थूत्कारकुसुमच्छन्ना भग्ननग्नाटकादयः ।। १०९४

१७. भारतीय इतिहास का उन्मीलन (जयचन्द्र विद्यालंकार) पृष्ठ २२६

१८. राजतरंगिणी ६ । ३१८ - ३३३

रहः प्रवेशितो दूत्या स माव्यर्वबलाद् युवा ।

संभुक्तभूरिजाराया अपि तस्याः प्रियोऽभवत् ।। ३२१

तुंगानुरागिणी राज्ञी पापा लज्जोज्झिता ततः ।

रसदानेन वैमुख्यभाजं मुय्युमघातयत् ।। ३२२

१६. बावरनामा (साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली) (६३५ हिजरी की घटनाएं)

२०. राजतरंगिणी १ । ६ - १०

२१. राजतरंगिणी (डॉ०रघुनाथ सिंह) प्रथम भाग भूमिका पृष्ठ ४०, ऊपर से आठवीं पंक्ति - 'शान्त रस इसका अंगी रस है, अन्य रस भंगभूत होकर आये हैं।'

२२. संस्कृत साहित्य का इतिहास - ए०वी०कीथ (अनुवादक मंगल देव शास्त्री) पृष्ठ २०३

२३. संस्कृत साहित्य का इतिहास - ए०वी०कीथ (अनुवादक मंगल देव शास्त्री) पृष्ठ २०७

२४. राजतरंगिणी - भाष्यकार - रघुनाथ सिंह भूमिका पृष्ठ १४

अध्याय ३

कतिपय राजाओं का चरित्र-चित्रण

पवित्र भूमि

राजतरंगिणी की प्रथम तरंग में गोनन्दवंश का इतिहास आरम्भ करते हुए महाभारत के भगवान् कृष्णा को इससे सम्बद्ध किया गया है और कहा गया है कि कश्मीर का राजा उस समय शिशु था इसलिए उसने महाभारत युद्ध मे भाग नहीं लिया। यह कहानी इस प्रकार है -

जिस समय कृष्ण और बलराम ने कंस को मारकर मथुरा पर अधिकार कर लिया था। उस समय कश्मीर के राजा गोनन्द (प्रथम) का शासन था। कंस के मारे जाने से मगध सम्राट जरासन्ध दुःखी हुआ और उसने मथुरा पर चढ़ाई की। जरासन्ध की सहायता में गोनन्द ने भी अपनी सेना लेकर मथुरा को घेर लिया, वहाँ पर यादवी सेना उनसे हारकर भागने लगी तब लांगल ध्वज बलराम ने गोनन्द पर आक्रमण किया दोनो तुल्य बलशाली राजाओं का देर तक युद्ध लेकिन बलराम ने अपने प्रहारों से गोनन्द को मार डाला[1]। गोनन्द केमारे जाने पर उसका पुत्र दामोदर कश्मीर राजा हुआ, किन्तु यादव बलराम द्वारा पिता के मारे जाने का क्षोभ उसके हृदय को सालता

रहा। इसी समय गान्धार नरेश सिन्धु नदी के तट पर अपनी कन्या का स्वंयवर आयोजित किया जिसमें यादवों (वृशियों) को भी आमंत्रित किया गया। यह जानकर दामोदर ने सेना के साथ उस स्वयंवर मे भाग लिया और वृशियों को घेर लिया। दोनो सेनाओं का तुमुल युद्ध हुआ, लेकिन कृष्ण के चक्र से दामोदर स्वर्ग सिधारा[२]। उसकी मृत्यु हो जाने पर उसकी गर्भवती पत्नी यशोवती देवी के प्रति भगवान् कृष्णा की आदर भावना तथा सहानुभूति उत्पन्न हुइ, उन्होने कश्मीर के सिंहासन पर ब्राह्मणों द्वारा यशोवती का राज्याभिषेक करा दिया। यादवो मे इस कार्य से ईर्ष्या और द्वेष उत्पन्न हुआ तब कृष्णा ने उनको समझाते हुए यह पौराणिक श्लोक पढ़कर शान्त किया -

कश्मीराः पार्वती तत्र राजा ज्ञेयो हरांशजः ।

नावज्ञेय स दुष्टोऽपि विदुषाभूतिमिच्छता ।।

(तरंग १ । ७२)

कहा कि कश्मीर भूमि पार्वती का स्वरुप है और उसका राजा हर (शिव) का अंश होता है, जो अपना कल्याण चाहते है वे उसकी अवज्ञा नहीं करते, चाहे वह दुष्ट ही हो।

इस प्रकार इस प्रसंग को उद्घृत कर कल्हण ने कश्मीर धरती को बड़ा ही पवित्र निरूपण किया है और भी जैसा कि पहले कहा जा चुका है, यह भूमि इसके पूर्व ,सतीसर के रूप मे थी कश्यप ऋषि ने इसका पानी निकाल कर इसको भूमि का रुप प्रदान किया। जो भूमि पार्वती का रुप हो, उसका राजा शिव का अंश नही होगा तो उसकी पवित्रता तथा प्रताप दोनो पर प्रश्न

चिह्न लग जायगा।

कश्मीर भूमि की इतनी बड़ी पवित्रता प्रमाणित करने के बाद कल्हम ने जिन राजाओं का चरित गाया है वे ऐसे है जो प्रायः धन के लोभी, कामातुर, प्रजा की उपेक्षा करने वाले है, और जिनका शोर्य गाया जाता है ललिता दित्य जैसे राजा वे भी धन के लिए विज। के नाम पर लूट करने ही निकले थे, जैसाकि मध्य एशिया के चंगेज और तैमूर ने किया। जो विजय के लिए नहीं निकले, हर्ष जैसे राजा वे भी धन के लोभ में यह जानकर कि मन्दिरो मे धन है उनकी मूर्तियाँ धातु निर्मित है- मन्दिर और मूर्ति दोनों को लूटा। पार्वती रुपी कश्मीर भूमि की स्वामिनी रानी दिद्दा कामतुरा निकली कि वह नये - नये मुहरों की खोज अपनी काम वासना की शान्ति के लिए करती रही, और अन्त में एक निम्न जाति के युवक को अपना घोषित पति ही बना लिया। मन्त्री ऐसे रहे जो राजा के अत्यन्त चापलूस थे, राजा की प्रसन्नता के लिए गलत परामर्श देते रहे, अथवा राजा के साथ विश्वासघात किया एकाध ऐसे हे जो राजा के गाढ़े मे अपनी प्राणाहुति दी।

यहाँ इस अध्याय मे छह राजाओं के चरित्र का विश्लेषण कर रहा हूँ जिनमें एक रानी है। इनके नाम क्रमशः ये है - चक्रापीड, मुक्तापीड, ललितादित्य, जयापीड, अवन्तिवर्मा, दिद्दा रानी, हर्ष।

काल गणना - कश्मीर नरेश को कल्हण महाभारत काल के साथ रखता है। उसने पूरी राजतरंगिणी मे लौकिक संवत का प्रयोग किया है, यह लौकिक संवत् सप्तर्षि संवत् है। जिस

समय पाँडव युधिष्ठिर पृथ्वी पर शासन कर रहे थे, सप्तर्षि महा नक्षत्र पर थे। सप्तर्षि एक नक्षत्र पर सौ वर्ष रहते है। यह माना जाता है युधिष्ठिर का राज्यकाल शक संवत् से २५२६ वर्ष पूर्व हुआ। -

आसन्म घासु मुनयः शासति पृथिवी युघिष्ठिरे नृपतौ ।

षड् द्विक पञ्च द्वितयः शककालस्तस्य राज्यस्य ।

(१ । ५६)

डा० रघुनाथ सिंह षड् द्विक पञ्च द्वितय : का अर्थ २५२६ वर्ष करते हैं, प० रामतेज शास्त्री ने इसका अर्थ किया है २५५६ वर्ष । शास्त्री जी का अर्थ अधिक ठीक प्रतीत होता है एक तरह से कश्मीर राज्य का अस्तित्व लौकिक संवत २५५६ के पूर्व से ही गोनन्द के राज्यकाल से आरम्भ होता है । कल्हण ने जयसिंह के काल में राजतरंगिणी पूरी की तव लौकिक संवत् का ४२२५ वां वर्ष था । इस प्रकार इस काव्य प्रबन्ध में ३६२६ वर्ष के कश्मीर राजाओं का इतिहास है । कल्हण ने महाभारत युद्ध को कलि संवत् वे ६५३ वें वर्ष में स्वीकार किया है । ३६२६ में ६५३ वर्ष जोड़ने पर कल्हण के समय का कलिसंवत काल होगा । कलि संवत गणना से इसमें केवल कुछ वर्षों का अन्तर है ।

कल्हण ने जब राजतरंगिणी का लेखन आरम्भ किया तव लौकिक (सप्तर्षि) संवत् ४२२४ वैं वर्ष था तथा शक शंवत के १०७० वर्ष बीत चुके थे (ईस्वी सन ११४८) । लौकिक संवत कलि संवत् के २५ वर्ष पश्चात आरम्भ होता है । कल्हण ने राजाओं के काल निर्णय के निस्तभिकी समबन्ध

मे लौकिक संवत् का ही प्रयोग किया है । यह विशेष बात है कि कल्हण ने एक स्थिर मत इतिहासकार की भांति राजाओं के राज्यकाल का विवरण देते हुए लौकिक संवत उनके राज्य की कालावधि वर्ष मास तथा दिन में गिनती करता है । ऐसे सूक्ष्म काल विवरण में वह अपनी तुल्यता नही रखता है। अब आगे ऊपर दी हुई सूची के अनुसार राजाओं के शासन तथा चरित्र का अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है।

चन्द्रापीड

मैंने सूची में जिन राजाओ का नाम दिया है उनमें चन्द्रापीड प्रशसनीय चरित्र का राजा है। उमके संयम तथा राज शक्ति का अन्तः तेज है जिससे वह राजदण्ड का उचित प्रयोग करने में सक्षम हुआ । चन्द्रापीड का पिता राजा दुर्लभक था और उसकी माता नरेन्द्र प्रभा राज्य के प्रसिद्ध सेठ नोण की पत्नी थी । जिसपर आसक्त होकर राजा ने उससे विवाह कर लिया था । चन्द्रापीड उदार और सच्चरित था । उसने अपने चरित्र से पिता के नारी-मोह कलंक को धो दिया था[3]।

उसके उत्तम राजचरित्र के दो प्रसंग राजतरंगिणी में दिये गये है । उसका उत्तम राजचरित्र ही अन्त में उसकी मृत्यु का कारण बना ।

पहला प्रसंग है कि राज्यमंत्री गण त्रिभुवनस्वामी का मन्दिर निर्माण कराना चाहते थे , जहै मन्दिर बन रहा था, वहां एक चर्मकार की झोपड़ी थी । चर्मकार अपनी झोपड़ी छोड़ने को तैयार रहीं था । राजा को जब यह मालूम हुआ तो उसने कर्माधिकारियों को ही दोषी बताया

। उसके समाधान हेतु राजा ने उसे बुलाकर राजभवन के बाहनलि में मुलाकात की और उससे उसका अभिप्राय पूछा उसके अनुसार राजा ने जाकर वित्त देकर उसकी कुटी का आदर पूर्वक ग्रह्मण किया । चर्मकार ने केवल राजा के वचन का आदर कर् कुटी दे दी । तब वहां पर मन्दिर निर्माण हुआ । इस प्रसंग में चर्मकार का धर्म-युक्त उदगार पठनीय है

श्वविद्रहेण घर्मेण पाण्डुसनोः पुरा यथा ।

धार्मिकरंव तथा ते डघ मया डसटश्पेन वीक्षितयू ।।

(तरंग ४।७६)

अर्थात-पुराकाल में जैसे दर्म ने कुत्ते से कृप पकड़ कर पावपुत्र ने युधिष्ठिर की परीक्षा ली थी वैसे ही आज सभी अस्पृश्यने अपना धार्मिकता का अवलोकन किया।

यह प्रसंग राजा की प्रजा के प्रति उदार दृष्टि तथा मवके लिए उन्मुक्त न्याय का उदाहरण है।

दूसरा प्रसंग इससे थोड़ा जटिल है । एक विद्वान ब्राह्मण को ईर्ष्याद्वेष वश पर दूसरे अभि चारिंक तांत्रिक ने मार डाला । इस पर उसकी विधवा पत्नी ने इसका न्याय प्राप्त करने के लिए प्रामोपवेशन (अनशन) कर दिया। राजा चिन्तित हुआ और उस ब्राह्मणी से बोला कि मैं इसमे क्या कर सकता हूं, जब तक अपराधी ज्ञात न हो। ब्रह्मणी ने अभिचार के ब्रह्मण पर अपना सन्देह व्यक्त किया और कहा कि वह खर्खोद विद्या से यह सब करता है[४] । लेकिन राजा ने अपने विश्वास तथा सत्यता की जांच के लिए त्रिभुवनस्वामी के मन्दिर में तीन दिन तक उपवास किया,

---

तब रजनी व्यतीत हुए उस सत्यभाषी से सत्यवाहन विष्णु ने इस प्रकार कहा।

इदं न युज्यतेराजन् सत्यास्यान्वेषणा कलौ ।

निशीथे कस्यसामर्थ कर्तुं दिवी विकर्तनम ।।

भवच्छक्त्साम्प्ररोघेन सहद्रेतत्प्रवर्त्यते ।

मद्प्रसादाङ्गनेऽमुष्मिन् शालिचूर्णा विवीर्यताम् ।।

प्रदक्षिणं कुर्वतोऽस्य त्रिरत्र यदि दृश्यते ।

ब्रह्महत्या पापमुद्रा पादमुद्रानुयायिनी ।।

तदैव वधको भूत्वा सद्दशम् दण्डमर्हति ।

रात्रावेष विधिः कार्यादिने पापहृदर्यमा ।।

तरंग ४. १०१ - १०४

अर्थात् राजन्! कलियुग में इस प्रकार सत्य के अन्वेषण के लिये अनशन करना उचित नहीं है, रात्रि में दिन का उजाला नहीं हो सकता। आपकी राजशक्ति का ध्यान रखकर मैं एक बार चमत्कार दिखा रहा हूँ मेरे उस मन्दिर के आँगन में चावल का आटा विखेर दो और उस सन्दिग्ध व्यक्ति से उस पर चलने को कहो, तीन बार परिक्रमा करे, यदि उसके पीछे ब्रह्म - हत्या के पद-चिन्ह भी दिखायी पड़े तो उसको अपराधी मान लें और वह दण्ड का अधिकारी है। रात्रि में ही यह विधि कीजिये क्योंकि दिन में दिनकर पाप हरण कर लेते हैं।

राजा ने ऐसा ही किया और वह ब्रह्मण ब्रह्म - हत्या का दोषी पाया गया। क्योंकि वह ब्रह्मण था, इसलिए उसे प्राण - दंड न देकर अन्य दंड देकर दंडित किया। विधवा ब्राह्मणी ने राजा को आशीर्वाद देते हुए कहा -

इत्यवनिभृत्सर्गे गूढपापानुशासनम् ।

कार्तवीर्यस्य वा दृष्टं तव वा पृथिवीपते ।।

दण्डधारे त्वयि क्ष्माप क्षितिमेतां प्रशासति ।

को वैरस्नेहयोः पारमनासाद्यवसीदति ।।

तरंग ४ । १०७ - १०८

अर्थात् हे पृथिवापति! सृष्टि परम्परा मे गुप्त पाप का दण्ड या तो आपने दिया या कार्तवीर्य अर्जुन मे यह सामर्थ्य देखी गयी। हे दण्डधारी पृथ्वीपति! आपके शासन करते हुए कोई भी बैर और स्नेह का परिणाम प्राप्त किये बिना नही रह सकता।

ब्राह्मण को अपराध करने पर भी बध नहीं किया जा सकता[५], राजा चन्द्रपीड ने स्मृति के इस अनुशासन का पालन किया और धर्म की मर्यादा रखी, वह सत्यशील तथा धर्मव्रती था।

किन्तु राजा के सौतेले भाई तारापीड़ ने राज्य - लोभ में इसका उल्टा लाभ उठाया, वह उस ब्राह्मण से मिलकर राजा चन्द्रपीड के ऊपर अभिचार कर्म कराने मे सफल हो गया। अभिचार कर्म सफल हो गया, राजा चन्द्रपीड मुमूर्षु अवस्था में पहुँच गया, तव अधिकारियों ने उस ब्राह्मण

को पकड़ कर राजा के सामने उपस्थित किया, पर राजा ने यह कह कर कि अन्यों द्वारा प्रेरित होने के कारण इस बेचारे का कोई दोष नहीं है, और उस ब्राह्मण के वध की आज्ञा नहीं दी।[6]

कवि कल्हण इस पर टिप्पणी करता है कि ऐसे राजा को सत्ययुग में होना चाहिए था, कलियुग में नहीं। वह कहता है कदाचित् ब्रह्मा भूल गये, मत्ययुग में रखने से भूल हो गयी तो काकपद लगाकर कलियुग के राजाओं की सूची में इस चन्द्रापीड को भी रख दिया -

विस्मृतः स कृतक्ष्माभृत् पङ्क्तिमध्येऽद्यवेधसा।

दत्वा काकपदं मूनं न्यस्त कलिनृपावलौ ।।

(तरंग ४ । ११७)

राजा चन्द्रापीड की मृत्यु हो गयी। उस लोकप्रिय राजा ने आठ वर्ष आठ मास तक कश्मीर-पृथिवी का शासन किया। उसकी मृत्यु पर प्रजा बड़ी दुःखी हुई।

कल्हण ने यहाँ एक टिप्पणी और की हैकि उसी समय से राज्य लोभ में राजवंशजों ने अपने गुरुओं के प्रति दुष्ट अभिचार क्रियाएं कराने की शुरुआत की। इससे पूर्व ऐसा नहीं हुआ था। इसके बाद ऐसी क्रियाएं प्रायः राजवंश के लोग कराते रहे।

राजा चन्द्रापीड का राज्य समय ईस्वी सन् ६८५ से ६६३ तक था अर्थात् सातवीं शती का उत्तरार्ध। कल्हण कहते हैं कि कश्मीर राज्य में अभिचार क्रिया की यह प्रथम घटना थी। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र ग्रन्थ में अभिचार क्रियाओं को भी राजनीति- कूटनीति का अंग माना है[७] और

उससे रक्षा के उपायों मे कहा है कि राजा को चाहिए कि वह तन्त्र - मन्त्र में निष्णात यज्ञकर्ता ब्राह्मणों द्वारा समय समय पर याज्ञिक अनुष्ठान कराता रहे।[८] उससे यह सिद्ध होता है कि अभिचार क्रियाएं प्राचीन राजघरानों मे हुआ करती थी। कश्मीर के ब्राह्मणों में इस विद्या के प्रति आकर्षण बाद में हुआ, और निश्चित रुप से इस विद्या को उन्होने काशी या मगध मे सीखा होगा। अनेक कश्मीर के विद्वानों के काशी रहने तथा पढ़ने के उल्लेख प्राप्त होते हैं। अथर्ववेद मे ऐसी क्रियाओ के किये जाने की विधि तथा मन्त्र विस्तार से है। पर यह क्रियाएं इतनी सरल नहीं है, जैसा कि कल्हण उल्लेख कर देता है। इनके लिए स्थान, समय और व्यक्ति की उपलब्धि कठिन होती है।

बाण के हर्ष चरित में वेताल को सिद्ध करने वाले भैरवाचार्य का वर्णन आया है, उस वर्णन को पढ़कर उन अभिचार क्रियाओं की समारम्भ की विभीषिका तथा उसकी दुर्लभता का पता चलता है, तथा यह भी कि बाण की जन्मभूमि प्रीतिकूट, देश का मध्य तथा पूर्वी भाग इन क्रिया - निष्णात पंडित जनो की भूमि अवश्य रही होगी। बाण ने हर्ष चरित के तृतीय उच्छ्वास में राजा पुष्यभूति के प्रसंग मे भैरवाचार्य का पूरे विस्तार से वर्णन किया, उनकी साधना के समय का एक चित्र ऐसी साधनाओं की विभीषिका का दर्शन कराता है। बाण लिखते हैं - राजा ने साधना भूमि में, जो भस्म से पुती थी जैसे कुमुद का पराग छिटका हो दीप्त तेज भैरवाचार्य को देखा। उस समय वे रक्त चन्दन से चर्चित लाल माला और लाल वस्त्र से अलंकृत एक उतान पड़े हुए शव की छाती पर बैठकर उसके मुँह में अग्नि जलाकर हवन कर रहे थे, हवन में तिल की आहुतियाँ थी। स्वयं भैरवाचार्य काला अंगराग, काली पगड़ी, काला रक्षासूत्र तथा काला वस्त्र पहने थे[९]।

ऐसा अनुमान है कि अभिचार क्रियाओं का यह पांडित्य परम्परया कश्मीर पहुँचा होगा। स्वयं कल्हण ने इसे खार्खोद विद्या कहा है। 'खार्खोद' शब्द लगता है कि अनूदित शब्द है।

ललितादित्य (अविमुक्तापीड)

तारापीड अत्याचारी राजा हुआ। उसने ब्राह्मणों को ही दण्ड देना आरम्भ कर दिया। चार वर्ष एक मास शासन करने के बाद उसकी मृत्यु हो गयी। और उसका छोटा भाई अविमुक्तापीड जिसे मुक्तापीड भी कहते थे, ललितादित्य के नाम से राजसिंहासन पर बैठा। यह घटना ६९७ ई० की है - लौकिक संवत् ३७७३ ।

डा० रघुनाथ सिंह ने मुक्तापीड और आविमुक्तापीड को एक ही माना है। पं० रामतेज शास्त्री ने दोनो को अलग। तारापीड के मरने के बाद ललितादित्य कश्मीर का शासक हुआ। और उसने भारत की पूर्वी, दक्षिणी तथा पश्चिमी सीमा तक अपनी विजय का अभियान किया। उसने ईरान पर भी चढ़ाई की उसकी ख्याति मुक्तापीड ललितादित्य के नाम से है। चीन पर भी उसने चढ़ाई की थी। पारसी इतिहासकार उसे मत्ती - मत्तपीर लिखते है, चीनी इतिहासकार कश्मीर के इस राजा का नाम मु-तो-पी लिखते है, जो मुक्तापीड का ही रूप है, ऐसा प्रतीत होता है कि 'अविमुक्तापीड' के उच्चारण मे 'अवि' उच्चारण की सुविधा से छोड़ दिया गया, और 'अविमुक्तापीड' को मुक्तापीड कहा गया। अविमुक्तापीड का अर्थ है जिसका आपीड (मुकुट) अविमुक्त(छूटा न हो, भ्रष्ट न हुआ हो), इसलिये वास्तविक नाम अविमुक्तापीड रहा होगा। उच्चारण - सौकर्य से ख्याति मुक्तापीड संज्ञा की हुई।

ललितादित्य शक्तिसम्पन्न बहुत पराक्रमी राजा हुआ उसने विशाल सेना लेकर भारत के प्रदेशों ब्रह्मावर्त (कान्यकुब्ज), गौड़, वंग, उत्कल, कावेरी के पश्चिम पार कोंकड़ आदि देशो को विजय करता सौराष्ट्र तथा सिन्धु नदी की तलहटी को जीता, उसने काम्बोज तुखार तथा ईरान तक अपनी विजय की पताका फहरायी, भौट्ट (भूटान) तथा प्राग्ज्योतिष (असम) को भी उसने जीता। पर उसका उद्देश्य साम्राज्य का विस्तार अथवा सुदृढ़ सुशासित राज्य की स्थापना करना कदापि नहीं था, उसका मुख्य लक्ष्य राज्यों को जीत कर उनसे भेंट के रूप में अधिक से अधिक धन राशि प्राप्त करना था, उसके साथ उस यश की कामना भी थी कि मुझे दिग्विजयी कहा जाये। लुण्टाक की तरह रुपयों की भेंट उगाहने में ही उसका चरित्र उजागर होता है, प्रजा के लिए सुशासित सुखदायी शासन उसने नहीं स्थापित किया। जब वह विजय के लिए निकला था तब उसके पास एक करोड़ मुद्रायें थी जब वह विजय कर के लौटा तब उसके पास धनराशि की संख्या ग्यारह करोड़ मुद्राएँ थी[१०]। इसे ही वह अपनी विजय समझता था। वे सभी पराजित राजा उसके लौटने के बाद स्वतंत्र शासक ही रहे। राजतरंगिणी की चतुर्थ तरंग में छन्द संख्या १२६ से ३७१ तक ललितादित्य का सम्पूर्ण इतिहास कहा गया। प्रायः यह सारा इतिहास उसकी विजयों का ही है। शासन - सम्बन्धी निर्देश के श्लोक २५ - ३० ही है जिनकी आगे चर्चा की जायेगी। यह अवश्य है कि अधिकांश वर्ष विजय - यात्रा में ही व्यतीत किये। यह भी सम्भावना की जा सकती है कि काशी, गौड़ देश पर कुछ समय तक उसकी ओर से उसके सामन्त शासन करते रहे हों। इसने प्रतापादित्य का विरुद धारण किया था। डा० रघुनाथ सिंह उल्लेख करते हैं कि 'श्री ललितादित्य किंवा प्रतापदित्य की मुद्रायें भिटवारी गॉव फैजाबाद, बाँदा, राजघाट, सारनाथ

(वाराणसी), पटना, मुँगेर तक मिली है। किसी भी कश्मीर के राजा की मुद्रा कश्मीर से बिहार तक अभी नहीं मिली है[११]। ललितादित्य प्रादेशिक सामन्त से सार्वभौम सम्राट् हुआ यह उसके पराक्रम की बात थी, कल्हण उसकी प्रशंसा मे कहता है कि उसका यह उत्कर्ष सृष्टि विधाता ब्रह्मा के लिए भी अगोचर रहा।[१२] शुक्रनीति के अनुसार राजाओं की गणना में 'सार्वभौम' पृथिवी के सम्राट् को ही कहा जा सकता है, राज्य की आय की दृष्टि से भी सर्वोपरि आय वाला ही सार्वभौम कहा जाता था। शुक्रनीति के अनुसार राज्यों (राजाओं) का वर्गीकरण इस प्रकार है - सामन्त, माण्डलिक, राजा, महाराज, स्वराज, सम्राट्, विराज तथा सार्वभौम। इस दृष्टि से ललितादित्य सार्वभौम था।

ललितादित्य ने कुल छत्तीस वर्ष सात मास ग्यारह दिन तक राज्य किया। अर्थात् इसका राज्यकाल ६९७ - ७३४ ई० तक था।[१३] ललितादित्य की मृत्यु रहस्यमय बनी रही,जानी नहीं जा सकी। यह राजा विजय के अभियान का ही कौतुकी था। अन्तिम बार इसने उत्तरापथ (गंधार, मध्य एशिया, लिंपक, कुलूत आदि) को विजय करने की इच्छा से युद्ध - अभियान किया। जहॉ पर सूर्य की किरणें भी नहीं पहुँची वहाँ यह राजा भी अपनी सेना लेकर पहुँच गया, पर अन्त मे वह ऐसी किसी महान् विपत्ति में पड़ गया, जहाँ से उबर कर आ नहीं सकता था, अतः उसने अपना विशेष दूत कश्मीर राज्य के मन्त्रियों के पास भेजे, और सन्देश कहलाया कि विजयाभिलाषियों की कोई सीमा नहीं होती, यह जानकर कि मैं नही आऊँगा, मेरे सन्देश के अनुसार राज्य का शासन और उत्तराधिकारी निश्चित करें। उसके सन्देश के अनुसार मन्त्रियों ने उसकी आज्ञा का पालन किया। ललितादित्य का न लौटना निश्चित जानकर राजपुत्र कुवलयापीड

का राज्याभिषेक किया गया।

ललितादित्य विजय - अभियान में किस विपत्ति मे पड़ गया जो वह लौट नहीं सका, अथवा उसकी कहाँ पर मृत्यु हुई, इस सम्बन्ध में कवि कल्हण ने उदन्त वार्ताओ के आधार पर कुछ उल्लेख किये है - एक उल्लेख यह है कि आर्याणक (ईरान) देश में वहुत अधिक हिमपात के कारण सेना के साथ राजा ललित्यादित्य की वहीं मृत्यु हो गई। दूसरी वार्ता यह है कि वह राजा सेना सहित उत्तरापथ की किसी देव-सुलभ भूमि में प्रवेश कर गया। तीसरी बात इस प्रकार कही जाती है कि अव तक दिग्विजय की अर्जित प्रतिष्ठा किसी स्थान पर दाँव पर लग गई और अप्रतिष्ठा की संभावना देखकर राजा अग्नि में प्रवेश कर गया। जैसे उस राजा के सारे कार्य अद्भुत थे वैसे उसकी मृत्यु की कथा भी अद्भुत है।[14] असामान्य महत्व के अभिलाषी महान् जनों की विपत्ति (मृत्यु) की भी असामान्य वार्ताएं लोक में प्रचलित हो जाती हैं।[15]

ललितादित्य ने अपनी मृत्यु को आसन्न देखकर अथवा कश्मीर लौटने से निराश होकर, जो सन्देश मंत्रियों को भेजा उसमें उत्तराधिकार के साथ राज्य शासन प्रवन्ध की बातें भी थीं जो कश्मीर शासकों के उस दृष्टिकोण को उजागर करती हैं जो वे प्रजा के प्रति रखते थे, जिसमें शासन (राज्य) की समृद्धि ही मुख्य थी। सन्देश की मुख्य बातें इस प्रकार हैं -

प्रथमतः प्रशासन की बातें -

मेरी अनुपस्थिति में राज्य संचालन के इन सिद्धान्तों का ध्यान रखना -

(१) राज्य के अधिकारीगण पर कड़ी दृष्टि रखना तथा कभी भी अपना भेद

उनसे न प्रकट होने देना। जैसे चर्वाकों को परलोकभय नहीं होता वैसे ही ये धर्म का भय छोड़ कर अपना लोभ सिद्ध करते है। (तरंग ४ । ३४५)

(२) राज्य की सीमा में जो दुर्गाश्रित सामन्त हैं, जहां पर जाना कठिन होता है, ये निर्दोष हों तो भी उन पर दण्ड लगाते रहना चहिए जिससे कभी बलवान होकर हमारे वश के बाहर न हो जाएं। (तरंग ४ । ३४६)

(३) किसानों के पास वर्ष भर के लिए अन्न और खेती के साधन बैल आदि रहने चाहिए, उस से अधिक न रहने पाए नहीं तो वे सबल होकर राजा की आज्ञा का उल्लंघन करेंगे, डामर, हटी और दुःखदायी हो जाएंगे। (तरंग ४ । ३४७ - ४८)

(४) याद रखना पैदल तथा घुड़सवार सेना एक ही प्रान्त की नहीं होनी चाहिए। कायस्थ अधिकारी परस्पर विवाह समबन्ध न करने पायें, नहीं तो राज्य के लिए संकट पैदा होगा। (तरंग ४।३५१)

(५) राज्य कार्यों में जैसे कायस्थ लोभी होते हैं, वैसा ही लोभ यदि राजा में भी आ जाएगा तो प्रजा को विपत्ति उठानी पड़ेगी, राजवर्ग को लोभ से दूर रह कर शासन को कठोर रखना चाहिए । (तरंग ४।३५२)

इसके अनन्त उसने उत्तराधिकार के सम्वन्ध में निर्देश प्रदान किये ।

(६) उसने छोटे पुत्र को राज्य देने का निषेध किया। कहा कि कुवलयादित्य

और वज्रादित्य दोनो मेरे लिए समान हैं । उनके भिन्न स्वभाव है जो उनकी अपनी-अपनी माताओं के कारण है ज्येष्टपुत्र (कुवलयादित्य) को ही सिंहासन पर अभिषिक्त कीजिएगा । यदि उसमे राजोचित गुण का अभाव दिखलायी पड़े तो उचित कार्रवाई करना, यदि वह शोक वश राज्य छोड़ कर चला जाए अथवा अपना प्राण त्याग दे तो उसके लिए शोक न करना । (तरंग ४।३५५-३५७)

उसकी अन्तिम आज्ञा थी

(७) मेरे पौत्रों में जो सवसे छोटा है उस जयापीड से कहना कि 'पितामह के समान बनो ।'

पौत्रुषु मे कनीयान यो जयापीडो सिगदारकः ।

पितामह समो भूया इति वाच्यः स सर्वदा ।।

(तरंग ४।३५६)

ऐसा लगता है कि ललितादित्य अपने इस पौत्र को होनहार तेजस्वी समझता था ।

अपने राजा का सन्देश प्राप्त कर मंत्रियों ने अश्रुपूर्ण नेत्रो से राजपुत्र कुवलयापीट (कुवलयादित्य) को राज्य सिंहासन पर अभिषिक्त करने का निश्चय किया ।

ललितादित्य के उक्त सन्दैश में यही निष्कर्ष प्रकट होता है कि राज्य हित को सर्वोपरि रखा जाये । राजा दूसरों को वढ़ने न दे, समृद्ध न होने दे तथा अधिकारी गणों, विशेष रूप से कायस्थों

के लोभ पर पूर्ण अंकुश रखे, और स्वयं भी राजा लोभ से दूर रहे, तभी वह प्रजा के सुख की रक्षा कर सकेगा ।

पूर्व दक्षिण के विजय-अभियान से लौटने के बाद राजा के पास प्रकट धन राशि थी- ग्यारह करोड़ । उससे उसने प्रजा के हितकारी कुछ कार्य किये, पर अधिकांशतः उसने देवों तथा धर्माध्यक्षों का आशिर्वाद प्राप्त करने के लिए मन्दिर, मूर्तियां, मठ, चैत्य, विहार बनवाये, जैन तथा बौद्ध धर्मों के प्रति उसका समान अनुराग था, उनकी मूर्तियां और धार्मिक भवन चैत्य विहार आदि उसकी आज्ञा से निर्माण किये गये । उसकी रानियों तथा मन्त्रियों ने भी इस प्रकार के धार्मिक निर्माण के कार्य सम्पन्न किये । सामान्य रूप से निम्न विवरण उसके इन कार्यों का ब्योरा देता है ।

(१) किसानों के हित में इसने एक ही कार्य किया, वह है चक्रधर स्थान से वितस्ता नदी में अरधट्ट (रहट) लगवाकर, पानी ऊपर उठाकर ग्रामों में किसानों की भूमि सींचने के लिए अम्भ. प्रनारण की व्यवस्था[१६] ।

इससे अतिरिक्त उसने देवों, ब्राह्मणों, श्रमणों के प्रसन्नार्थ देवालय, मठ, चैत्य आदि बनवाये, इनमें से मुख्य विवरण इस प्रकार हैं -

(२) प्राग्ज्योतिषपुर (असम) की विजय के अनन्तर बालुकाम्बुधि में ललितादित्य ने स्त्री राज्य को विजित किया था । इसके बाद उसने उत्तर कुरु की विजय किया था । विजयापरान्त इस स्त्री राज्य में उसने भगवान नृसिंह की निरालम्ब मूर्ति स्थापित की थी, जो मन्दिर के बीचों बीच स्थापित दिखायी

पड़ती थी, उसके ऊपर तथा नीचे चुम्बक स्थापित कर ऐसा किया गया था[१७]।

(३) कश्मीर में जिस स्थान पर दिग्विजय करने का निश्चय किया था वहां पर सुनिश्चित पुर, तथा निश्चय पूर्ण होने पर जहाँ प्रवेश किया वहा दर्पित पुर नगर का निर्माण किया । (तरंग ४।१८३)

(४) राजा ललितादित्य ने जहां फल ग्रहणकिया वहा फलपुर, जहां पर्ण लिया वहा पर्णोत्स और जहां क्रीडा किया वहा रामविहार का निर्माण हुआ । (तरंग ४।१८४)

(५) हुस्कपुर में उस महात्मा राजा ने मुक्त स्वामी की स्थापना की तथा स्तूप सहित विशाल विहार बनवाया । (तरंग ४।१८८)

(६) रुद्र तथा आदित्य (मार्तण्ड) के मन्दिर बनवाये, मार्तण्ड के मन्दिर के साथ पत्थरो का प्राकार और द्राक्षा का उद्यान भी लगवाया । (तरंग ४।१९०,१९२)

(७) परिहासपुर नगर का निर्माण कराया तथा वहां परिहासकेशव की चांदी की मूर्ति, सोने के कमल पर स्थापित की । (तरंग ४।१९४-१९७,२०२)

(८) गोवर्धनधारी कृष्ण की स्थापना की, और वहीं पर ५४ हाथ की महाशिला के ऊपर विष्णुध्वज गरुड की स्थापना की । (तरंग ४।१९८।१९९)

(६) उस राजा ने जैनियों के बृहत चैत्य, चतुःशाला तथा राजविहार वनवाये । बौद्धधर्म के प्रति श्रद्धा रखकर एक हजार प्रस्थ तौल की तांवे की गगनचुम्वी बुद्धदेव की प्रतिमा स्थापित की । (तरंग ४।२००,२०३)

(१०) इससे अतिरिक्त उसने मन्दिरों को विविध दान दिये - रत्न सोना, गांव और सेवकों की नियुक्ति । (तरंग ४।२०६)

(११) जब राजा दिग्विजय में था तब उसके अधिकारियों ने उसके नाम से ललितपुर नगर बसाया था लौटने पर राजा ने वहां भगवान आदित्य की प्रतिष्ठा की, और कान्यकुब्ज की विजितधरती उनके नाम कर दी । (तरंग ४।१८६।१८७)

(१२) उसकी महारानियों तथा मंत्रियों ने भी कितने ही निर्माण कराये, जिनका विस्तृत ब्योरा कल्हण ने दिया है उसकी महारानी कमला ने कमलाहट्ट, चाँदी की कमला केशव की मूर्ती (तरंग ४।२०८), महारानी ईशान देवी ने खाताम्वु (४।२१२) तथा रानी चक्रमर्दिका ने हजार धरों से युक्त चक्रपुर का निर्माण कराया ।

ये सभी निर्माण राज्य में नगरों की तथा देवालयों की समृद्धि वढ़ा रहे थे ।

उसके दिग्विजय अभियान के कुछ विशिष्ट प्रसंग है जिनकी चर्चा और विवेचन यहा अपेक्षित है ।

कान्यकुब्ज नरेश यशोवर्मा पर चढ़ाई

उसका प्रथम युद्ध अभियान पूर्व दिशा में अन्तर्वेदी (ब्रह्मावर्त) में कान्यकुब्ज नरेश यशोवर्मा पर हुआ । यशोवर्मा ने बुद्धिमानी दिखायी जो युद्ध न करके पीट दिखाकर उसकी सेवा की । यशोवर्मा रूपी पर्वत से निकलनेवाली वाहिनी (सेना, नदी) को ललितादित्य ने शोषण कर अपने को प्रतापादित्य बना लिया[१८]।

यह वर्णन कल्हण ने राज्य की उदन्त वार्ताओं के आधार पर किया होगा । इसमें अत्युक्ति हो सकती है, पर सचाई भी है । सम्राट हर्ष के बाद समूचा उत्तरभारत जनपदों के राज्यों में विभक्त हो गया था, प्रत्येक जनपद (विषय,या प्रान्त) अपना अलग राज्य था, प्रत्येक पर कोई न कोई राजवंश राज्य कर रहा था । देश की सामूहिक एकता या राष्ट्र की भावना नहीं थी, प्रत्येक के अपने अहंकार थे ।

राजवंशों के व्यक्तिगत अहंकार अथवा राज्यसीमा की संकीर्णता का बहुत बड़ा कारण उस काल में बौद्ध धर्म की विचारधारा थी, जिस विचारधारा के आश्रय राजवंश बनते जा रहे थे, और जिस विचारधारा का लक्ष्य निर्वाण था। अर्थात राज्य छोटी चीज है, निर्वाण है--जीवन का महान लक्ष्य, अमरत्व है यद्यपि है वह परोक्ष । उस परोक्ष की सिद्धि में राजा या समाज के अग्रणी विद्वान भी भ्रमित होकर समाज और देश के उत्कर्ष का, उसके शक्ति संगठन का महत्व भूल चुके थे। एसे में जब कभी आक्रमणकर्ता लुटेरों की तरह सेना लिए पहुचते थे तव उसे कुछ उपहार या सेना का खर्च देकर छुट्टी पा लेते थे। यह स्थिती ग्यारहवीं बारहवीं शती ईस्वी तक चलती

रही। पड़ोस के ही राज्य को लूटे जाने का दुःख दूसरे राज्य को नहीं होता था। इसके कई उदाहरण हैं। धार का राजा भोज उस समय प्रसन्न और चुप था जब महमूद गजनवी भीम सोलंकी को लूट रहा था, भोज ने इसका अर्थ जो समझा हो, पर उसके बाद उसने भोज की राजधानी को भी ध्वस्त किया[१९]।

ललितादित्य और यशोवर्मा दोनों ही अपने-अपने अहंकार तथा विलास में डूबे रहने वाले देश, समाज और धर्म की सामूहिक एकत्व भावना से शून्य, लक्ष्यहीन राजा थे। जो देव-अंश होकर राजा बने थे, केवल प्रजा पर शासन करने के लिए, इस शासन में समृद्धि और धर्म दोनों का विधान उनका सहायक था, पर इसलाम के आक्रमण से इसकी रक्षा पर जो खतरा उत्पन्न हो रहा था, उसकी ओर दूर दृष्टि इनकी कदापि नहीं थी। इसी रक्षा - अभियान के निकट ७१२ ई० में अरबों ने सिन्ध के राजा दाहिर पर आक्रमण किया था, उसे ध्वस्त किया था, पर उसकी ओर ललितादित्य सोच भी नहीं सकता था।

अपनी विजय का आतंक दिखाने के लिए ललितादित्य खलीफा अमीर-उल-मोमनीम (मुम्मुनिम्) को तीन बार पराजित करता है[२०], पर सिन्ध पर अरबों के आक्रमण की ओर ध्यान भी नहीं देता। सिन्ध का राजा दाहिर उसका समकालिक था। छठी शती ई० में जनेन्द्र (राजा) यशोधर्मा ने जिस प्रकार का संघ बना कर हूणों के आक्रमण के सदा के लिए समाप्त कर दिया और उसके नेता मिहिरकुल को हिमालय की गुफा में खदेड़ कर चरणों में झुकाया,[२१] राष्ट्रीय एकता के ये उच्च विचार ललितादित्य में नहीं थे। ललितादित्य पर जैन तथा बौद्ध धर्मों का बहुत प्रभाव था, जिसके

कारण उसमें व्यक्ति अहंकार की मात्रा अधिक थी। विजय-यात्रा से लौटने के बाद उसे जैन तथा बुद्ध की मूर्तियाँ, चैत्य, मठ और मन्दिर बनवाए थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि ललितादित्य की इच्छा कान्यकुब्ज नरेश से अपनी विजयी सेना का खर्च, उपहार-स्वरूप लेने की थी। ललितादित्य इस बात से प्रसन्न हो गया कि राजा यशोवर्मा मेरी स्तुतीं (अर्थात् अभिनन्दन) कर रहा है, जिसकी राज-सभा में कवि वाक्पतिराज और श्री भवभूति जैसे विद्वान हैं।[२२] (संभवतः ललितादित्य की सभा ऐसे विद्वानों से शून्य थी)।

कान्यकुब्ज की विजय में जो सन्धि हुई, इसका विश्लेषण आवश्यक है । उस सन्धि में कान्यकुब्ज नरेश ने चालाकी दिखायी, जिसके चलते ललितादित्य यशोवर्मा का समूल विनाश करने पर उतारू हो गया (पर ऐसा लगता है कि वह वाक्पतिराज तथा भवभूति से बहुत प्रभावित हुआ, अतः ऐसा किया नहीं[23]।

बात इस प्रकार घटित हुई कि सन्धि लिखे जाने के समय कान्यकुब्ज नरेश ने सन्धि अभिलेख में अपना उल्लेख पहले कराया - **यशोवर्मा ललितादित्ययोः सन्धिरभूत इति** [२४]। इस उल्लेख से यशोवर्मा का नाम पहले हो जाने पर ललितादित्य की अप्रधानता हो गयी । जो कि सेनापितयों की दृष्टि में असूया थी राजा ने इसके औचित्य की अपेक्षा को वहुत महत्तव दिया, क्योंकि इसमें सीधे-सीधे ललितादित्य को अपना अपमान दिखायी पड़ रहा था। जिस सेनानी मित्र शर्मा ने इस औचित्य की ओर ललितादित्य का ध्यान आकर्षित किया, राजा उस पर वहुत प्रसन्न हुआ, उसने उसको (मित्र शर्मा को) अष्टादश के ऊपर पञ्च महाशब्द की उपाधि दी । अब तक मित्र शर्मा

नृपति ललितादित्य का केवल सांधि विग्रहिक अधिकारी था[२५]। अष्टादश और पञ्च महाशब्द अधिकारी संज्ञाओं की भिन्न भिन्न व्याखया की गई है । कल्हण लिखते हैं कि ललितादित्य ने अष्टादश के ऊपर जो पांच कर्म स्थान स्थापित किये वे ये हैं - महाप्रतिहार पीडा, महासन्धि, विग्रह, महा अश्वशाला, महाभाण्डागार, और महासाधन भाग । इन पदों पर राजकुल के मुख्य लोग (शहिमुख्य) ही अध्यक्ष नियुक्त होते थे[२६]। मित्र शर्मा को इन पांचों का प्रधान अध्यक्ष ललितादित्य ने बनाया, क्योंकि उसने सन्धि के समय कूट अभिलेख पर दृषटिपात कर अपने राजा के सम्मान की रक्षा की थी ।

दक्षिणा पथ की रानी रट्टा

ललितादित्य ने जब दक्षिणपथ की ओर आक्रमण किया तब वहां कावेरी के तट वर्ती जनपद पर कर्णाटक में रानी रट्टा शासन कर रही थी । यह रानी प्रभावशाली शासिका थी, उसने अपने शासन के प्रभाव से विन्ध्यपर्वत की ओर जाने-वाले मार्गों को निष्कंटक बना दिया था, तथा उनका विस्तार भी किया था । यहां पर विस्तार किये जाने का अर्थ यह है कि उत्तर से दक्षिण की ओर जो व्यापार के रास्ते थे, जिन पर साथ वह यात्राएं करते थे उनको सुरक्षित और सुगम कर दिया था, बेरोक टोक व्यापारी आ जा सकते थे[२७]।

किन्तु उस रानी ने ललितादित्य से युद्ध नहीं किया, उसके चरणों में प्रणाम किया । और कश्मीर के सैनिकों ने कावेरी नदी के तट पर नारिकेल फल का रस पीकर ठंडी हवा में अपनी थकान मिटायी ।

ताली तरब तला चान्त नालिकेर रसोर्मयः ।

कावेरी तीर पवनैः तद्योधाः क्लममत्यजन ।।

(तरंग ४।१५५)

ललितादित्य की विजययात्रा के प्रसंग में दक्षिण तथा प्रागज्योतिष में भी स्त्री राज्य का उल्लेख हुआ है । स्त्री-राज्य के इस उल्लेख से ऐसा अनुमान होता है कि देश में धार्मिक प्रभाव की बहुत मान्यता थी । राजा के नाम पर कोई भी गद्दी संभाल सकता था । छोटे-छोटे जनपदों (प्रान्तों) में पूरा देश बैटा था । स्त्री-राज्य का यह भी अर्थ नही समझना चाहिए कि वे १८५७ की झांसी की रानी महारानी लक्ष्मीबाई की तरह वीरांगना थी । वे इन्दौर की रानी अहिल्याबाई की तरह शासिका मात्र थीं ।

कालिदास का प्रभाव

ललितादित्य की विजय-यात्रा के वर्णन में कल्हण की कवि-प्रतिमा कालिदास के महाकाव्य 'रघुवंश' के चतुर्थ सर्ग में वर्णित रघु के दिग्विजय के प्रसंगों से प्रभावित है । राजतरंगिणी के निम्न छन्दों में भौट्टों की विजय की समानता-रघुवंश में हूणों की विजय से, दरदों की विजय रघुवंश के हिमालय- अभियान से तथा कस्तूरी-मृग एवं कुंकुमकेसर के वर्णन की समानता 'रघुवंश' में रघु के घोड़ों के केसर की क्यारियों में लोट कर थकान मिटाने से की जा सकती है।

चिन्ता न दृस्टा भौट्टानां वक्त्रे प्रकृतिपाण्डुरे ।

वनौकसामिव क्रोधः स्वभाव कपिले मुखे ।।

तस्य प्रतापो दरदां न सेहेऽनारतं मधु ।

दरीणमोषधि ज्योतिः प्रत्यूषेऽर्क इवोदितः ।।

कस्तूरी मृग संस्पर्शी घृत कुंकुम केसरः ।

सैन्य सीमन्तिनीस्तस्य संचस्कारोत्तरानिलः ।।

(तरंग ४।१६८-१७०)

रघुवंश महाकाव्य सर्ग ४ के छन्द इस प्रकार हैं -

यवनी मुख पद्मानां सेहे मधुमदं न सः ।

बालातपमिवाब्जानामकाल-जलदोदय : ।।

विनीताध्व श्रमास्तस्य सिन्धुतीर विचेष्टनैः ।

दुधुवुर्वाजिन स्कंधान् तग्नकुंकुमकेसरान् ।।

तत्रहूणा वरोधनां भर्तृषु व्यक्तविक्रमम् ।

कपोल पाटनादशि बभूव रघुचेष्टितम ।।

गंगा शीकरिणो मार्गे मरुतस्तं सिषेविरे ।।

विशश्रमुर्नमेरूणां छाया स्वध्यास्य सैनिकाः।

दृषदो वासितोत्संगा निषण्ण्मृगनाभिभिः ॥

पराजित के लांछन चिन्ह

कल्हण ने लिखा है कि ललितादित्य ने दाक्षिणत्यों तथा तुरुष्कों को पराजित करने के बाद पराजित होने के लाछन स्वरुप जो चिन्ह धारण करने के लिए आदेश किया उसे वे आज भी धारणा करते हैं । वह इस प्रकार दाक्षिणात्यों को अपना पशुत्व ज्ञापन करने के लिए भूमि स्पर्शी धोती का पुछला धारण करने पर मजबूर किया, जिसे वे आज भी धारण करते हैं तथा तुरुष्कों को पीठ पर भुजा तथा अर्धमुण्डित शिर रखने को बाध्य किया जिसका पालन वे आज भी करते हैं[२८]।

कवि द्वारा यह प्रशंसा परक अतिशयोक्ति है । दक्षिणराज्यों तथा तुरुष्कों का यह आचार उनका अपने समाज में पहले से विद्यमान रहा तथा बाद में भी रहा है । ललितादित्य से पराजित होने का लांछन नहीं है । वस्तुतः यह कह कर उनके इन सामाजिक आचारों का कवि ने उपहास किया है ।

ललितादित्य के लोकोत्तर चमत्कार की वार्ताएं

इसी प्रकार कल्हण ने ललितादित्य के दो तीन लोकोत्तर चमत्कार के सन्दर्भ पहले से उस के दिग्विजय में निबद्ध किये हैं ये संदर्भ पहले से उदन्त वार्ताओं में रहे होंगे, कल्हण ने उनको

अपने ऐतिहासिक काव्य में पिरो दिया है । इन सन्दर्भों को प्रचारित करने का श्रेय जैन श्रमणों को है जैसा कि कथा मे आये विवरण से ज्ञात होता है । कथाएं इस प्रकार हैं -

कैंथ की चटनी

राजा ललितादित्य पूर्व के समुन्द्र तट पर सेना सहित पड़ाव डाले था । उसने असमय में (ऋतु-काल के विपरीत) कैंथ ले आने की आज्ञा अपना परिकरों को दी (अर्थात उसे कैंथ की चाटनी खाने की इच्छा हुई) उसकी यह आज्ञा हेला (खिलवाड़) में ही दी गयी थी । कैंथ का यह समय नहीं था। कैंथ का फल मिल नहीं सकता था । अतः अमरपुर के स्वामी इन्द्र की ओर से एक दिव्य दूत टोकरी में कैंथ ले आकर वहा उपस्थित हुआ । यह इसलिए कि राजा ललितादित्य की खिलवाड़ में की गयी आज्ञा का देव-गण उल्लंघन नहीं करते थे[२६]। उस दिव्य दूत ने कैंथ की टोकरी तो प्रतीहार को दिया और राजा से एकान्त में कुछ सन्देश कहने के लिए अवसर मांगा । प्रतिहार ने सभा को निर्जन कर दिया ।

तब वह दिव्यदूत (पुरुष) राजा से बोला - कृपापूर्वक आप मेरे कथन की निष्ठुरता को क्षमा कीजिएगा, मैं देवराज इन्द्र का सन्देश कह रहा हूँ। वे कह रहे हैं कि इस कलियुग मे जिस कारण हम सब दिकूपाल आपकी आज्ञा का पालन कर रहे हैं उसका कारण सुनकर संयम लाइए। बात इस प्रकार है - पूर्व जन्म में आप किसी सम्पत्तिशाली गृहस्थ के हलवाहा (हालिक) थे। गरमी का समय था, वन के निर्जन में हल जोत कर आप थक गये थे, बैलों को जोत कर बैठ गये, दिन अस्ताचल की ओर था, भूख और प्यास से व्याकुल हो गये थे। तब गृहस्वामी के घर से

कोइ जल की गगरी ओर मालपूआ लेकर आया। आप हाथ मुँह धोकर जैसे ही खाने बैठे, क्योंकि भूख - प्यास से आप आतुर थे, वैसे ही एक ब्राह्मण अतिथि (श्रमण) आपके सामने आ खड़ा हुआ। जिसके प्राण भूख के कारण कण्ठ में अटके थे। उसने कहा 'मा भुङ्क्ष्व' (मत खाओ) अर्थात् मुझे देकर खाओ, क्योंकि भोजन के बिना मेरे प्राण निकलने वाले हैं। गृहस्वामी के यहॉ से आये हुए आदमी ने जो बगल में ही बैठा था, आपको ऐसा करने से रोका। पर आप नहीं माने और और आधा पानी तथा आधा मालपूआ उस भूखे ब्राह्मण को दे दिया। तव स्वयं खाया। आपके इस दान से स्वर्ग मे आपकी सौ आज्ञाएँ अखंडित हो गयीं। इसलिये आप जब जैसा कुछ कह देते है वह पूरा हो जाता है। आपके चाहने पर मरु के रास्ते पर सुस्वाद जल वाली नदियॉ प्रवाहित होने लगती है। आपका यह दान-वृक्ष दाता की इच्छाओं की पूर्ति करता हुआ स्वर्ग के कल्पवृक्ष को भी विजित कर रहा है। लेकिन अब आपकी आज्ञाऍ अल्प मात्रा में अवशिष्ट रह गयी है। इसलिए बिना मुख्य प्रयोजन के आप कहीं आज्ञा न दें। कश्मीर मे वर्षा काल के आरम्भ मे कैथ का फल मिलता है, यह शिशिर ऋृतु मे पूर्वी समुद्र तट पर कैसे मिलेगा। पूर्व दिशा के दिक्पाल महेन्द्र है, स्वर्ग में अखंडित आपकी आज्ञा इच्छा जानकर कैथ के फल भेजने पड़े।[30] राजा ललितादित्य दान का यह महात्म्य सुनकर बहुत विस्मित हुआ। इसलिए बाद में उसने परिहासपुर में बहुत बड़े पर्व की स्थापना की, जहाँ दक्षिणा सहित एक लाख भोजन (भात के पत्तल) प्रदान किये जाते थे।

भोजन दान की इस महिमा का वर्णन जैन श्रमणों या बैद्ध भिक्षुओं में रहा है। अपने धर्म मे उनको भी ब्राह्मण की संज्ञा प्राप्त है। महाभारत मे ऐसे कई प्रसंग प्रसिद्ध है, एक जगह महाभारत

मे कहा गया है कि आप ऐसे ब्राह्मण है जो केवल भोजन मात्र से संतुष्ट होकर त्रैलोक्य का राज्य दे सकते है।[31] मूर्ख बनाने की ऐसी प्रशंसा के समान राजतरंगिणी की यह उदन्त वार्ता भी है, जिसे सुनकर ही कल्हण ने अपने प्रबन्ध मे निबद्ध किया होगा।

बुद्ध की महिमा

राजा ललितादित्य पंचनद प्रदेश में सिन्धु नदी के दुस्तर संगम को पार करना चाहता था। सेना के साथ तट पर खड़ा वह चिन्तित हो रहा था, वह अपने मन्त्रियों से पार होने का उपाय पूछ रहा था कि तट पर स्थित चंकुण ने अगाध जल मे एक मणि फेका इससे नदी का पानी दोभागो में विभाजत हो गया, राजा सेना के सहित उस पार हो गया। तव चंकुण ने एक दूसरा मणि फेक कर उस मणि को खींच लिया। राजा इस आश्चर्य को देखकर चकित था। राजा ने चंकुण से वे दोनों मणि माँगे, उसने उत्तर में कहा कि ये मणि मेरे हाथ में ही क्रियावान होते हैं अन्यत्र नहीं जैसे चन्द्रकान्त मणि जब सागर के पुलिन पर रहता है तभी प्रस्रवित होता है, अगाध समुद्र मे चले जाने पर प्रस्रवित नहीं होता।

राजा की इच्छा उन रत्नों को लेने के लिए बलवती हो रही थी। उसने चंकुण से कहा कि इन रत्नों से अधिक मूल्यवान कोई वस्तु मेरे पास देख रहे हो तो उसको लेकर इनको मुझे दे दो। इससे चंकुण प्रसन्न हुआ, उसने कहा - यह आपकी महान् कृपा है, अब आप दोनो रत्न ले लीजिए और मेरा अभीष्ट दे दीजिये। उसने दोनो मणिरत्न राजा को दे दिये और उनसे कहा कि मगध देश से हाथी के कन्धे पर रखकर जो सुगत (बुद्ध) की प्रतिमा आयी है उसे देकर मुझे अनुगृहीत

करें। नदी पार करने के उपाय भूत इन मणिरत्नो को लीजिए और संसार पार करने के उपायभूत सुगत (प्रतिमा) मुझे अर्पित कर दें।[32]

राजा से उस प्रतिमा को प्राप्त कर चंकुण ने उसे विहार में स्थापित किया। वह प्रतिमा कपिश-कान्ति से युक्त थी। यह कथा देकर कल्हण ने ललितादित्य की श्रद्धा बुद्ध के प्रति प्रकट की है। यह भी सत्य है कि राजा ललितादित्य ने बौद्ध धर्म के हेतु विहार तथा मठ निर्माण कराये थे।

रसातल की सरिता

एक बार ललितादित्य ने शत्रु के गुप्तचर के वाग्जाल में फंस कर अपनी सेना सहित मरुस्थल पर्वत के बीच प्रवेश किया। सेना के पास पीने के लिए पानी नहीं रह गया था। गुप्तचर ने अपने को राजा ललितादित्य का सेवक और किसी राजा का मंत्री बताया था, जिस राजा ने इसको ललितादित्य को प्रणाम करने का सुझाव देने के कारण, राज्य से बाहर निकाल दिया था। उसने आकर ललितादित्य को अपने शरीर पर मारे जाने के घाव दिखाये और ललितादित्य का बड़ा हितैषी बन बैठा। तथा मरुस्थल के राजा पर आक्रमण करने के लिए अथवा दण्ड देने के लिए जबरदस्त प्रेरणा दी। ललितादित्य अपनी सेना लेकर उधर ही चल पड़ा। तब उसने कहा कि आपको शीघ्र पहुँचना चाहिये, अन्यथा वह राजा राज्य छोड़कर जा सकता है, तब दण्ड नहीं पा सकेगा। यह कह कर उसने राजा को पन्द्रह दिन का मार्ग सुझाया। राजा उसी मार्ग से चल पड़ा। पन्द्रह दिन बाद एक बालुकार्णव मे प्रवेश किया। प्यास से सूखें कण्ठ राजा को तीन दिन

बीत गये, और उन्होने उस गुप्तचर मंत्री से कहा कि तुमने जितना कहा था उससे अधिक दिन बीत गये। सेना बिना पानी के मृतप्राय हो रही है।

राजा के ऐसा कहने पर वह हँसा और हँसकर बोला - 'जिगीषु ! आप क्या पूछ रहे हैं, शत्रु के राष्ट्र का मार्ग या यम के राष्ट्र का मार्ग' अब आगे बालुकार्णव ही है यहाँ आपका कोई रक्षक नहीं है।[33]

तदन्तर उसका भेद प्रकट हो गया। ललितादित्य की सेना के मुख पर घोर उदासी छा गयी। ललितादित्य ने उस समय अपनी महानता के अनुरूप बात कही - 'अमात्य (गुप्तचर) ! तुमने अपने स्वामी के हित के लिए मेरा विनाश करने हेतु जो यह जघन्य कृत्य किया है इससे मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ (स्वामी के हित में ऐसा करना चाहिए।) लेकिन तुम अपने को सफल मनोरथ नहीं समझो। इस मरुभूमि मे भी हम शीत से आर्त होकर रोमांचित हो रहे है। तुम्हारा प्रयोग उसी प्रकार कुण्ठित होगा जैसे वज्रमणि पर लौह का प्रहार। [34]

यह कह कर राजा ने अपने भाले की नोंक से पृथ्वी पर तीव्र प्रहार किया, पृथ्वी फट गई तथा रसातल से सरिता का प्रवाह ऐसे फूट पड़ा, जैसे पाताल लक्ष्मी विलास में मुस्कुरा रही हो।[35] समस्त सेना ने जल पीकर अपनी थकान मिटायी। शत्रु के मनोरथ चकनाचूर हो गये। राजा ने शत्रु नगर पर आक्रमण कर उसे नष्ट कर दिया।

राजा द्वारा रसातल की सरिता को प्रकट करने का यह चमत्कार पीछे वर्णित १०० अखंडित आज्ञाओं के अन्तर्गत आता है।

ललितादित्य की जीवन संध्या

उसके अन्तिम दिनों मे उसके प्रताप की आग ठंडी पड़ने लगी। उसने अपने दिग्विजय के आरम्भ मे कान्यकुब्ज तथा गौड देशों का विजय किया था, इसके पूर्व गौड देश ने गुप्तों का दिगन्तव्यापी प्रताप देखा था। कान्यकुब्ज तो चुप रहा, पर गौड ललितादित्य से बदला चुकाने की ताक मे था। सम्भवतः ललितादित्य ने गौडराज को बन्दी बनाकर परिहास केशव मन्दिर के निकट त्रिगामी स्थान पर आततायी पुरुषों से वध करा दिया था। इसके वाद अपने दिवंगत प्रभु के लिए गौड वीरों ने अद्भुत पराक्रम का परिचय दिया। कश्मीर में प्रवेश किया। चाँदी की रामस्वामी की प्रतिमा को तोड़कर धूल कर दिया। पुजारियों द्वारा कपाट वन्द कर देने से किसी प्रकार परिहास हरि की रक्षा हो सकी। नगर में पद-पद पर युद्ध हुआ। कल्हण लिखता है कि कहॉ दीर्घकाल में लंघनीय मार्ग और कहाँ दिवंगत प्रभु मे भक्ति। गौडो ने स्वामिभक्ति मे जो वीरता दिखायी वह विधाता के लिए भी असाध्य था-

विधातुरत्यसाध्यं तद् यद् गौडैविर्हितं तदा ।

(तरंग ४ । ३३२)

इससे लगता है कि ललितादित्य जितना पराक्रमी था उतना नीतिनिपुण नहीं था, जब वह राज्य और राजधानी मे न हो तो उसे वहॉ की रक्षा का उचित प्रबन्ध कर के ही जाना चाहिये था । वह केवल देश - विजय तथा राजाओं से धन बटोरने में संलग्न था। प्रायः वह विजय करता गया, क्योंकि देश मे कहीं सुदृढ़ शासन नहीं था। अन्यथा कहा यही जाएगा कि न तो

वह पड़ोसी राज्यों की पूरी खबर रखता था और न ही षाड्गुण्य (सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संशय, द्वैधीभाव) में कुशल राजा था।[36] इसीलिये अन्तिम बार उत्तरापथ की चढाई में वह फिर लौटकर कश्मीर नहीं लौटा,[37] इसका विवरण पीछे विवेचन किया जा चुका है।

जयापीड

जयापीड ललितादित्य का पौत्र था। कुवलयापीड या पृथिव्यापीड के बाद वह राजगद्दी पर बैठा। अमात्यों ने ललितादित्य के आदेश से इसको सदा पितामह के समान बनने की प्रेरणा दी थी। राज्य - प्राप्त करने के अनन्तर वह पितामह के समान ही दिग्विजय के लिए निकल पड़ा। चतुर्थ तरंग में इसका लम्बा वृत्तान्त छन्द संख्या ४०२ से ६५६ तक है।

यह प्रारम्भ में जितना लोकप्रिय रहा अपने उत्तरार्ध जीवन में उतना ही अलोकप्रिय हुआ, तथा ब्राह्मणों का कोप- भाजन बन कर मृत्यु को प्राप्त हुआ। इसने ३१ वर्ष तक कश्मीर पर शासन किया। कल्हण ने इसे अनियत चित वृत्ति वाला राजा कहा है।[38] जयापीड का राज्याभिषेक काल लौकिक संवत् ३८२१, ईस्वी सन् ७४५ई० था और उसने लौकिक संवत् ३८५२, तथा ईस्वी सन् ७७६ई० तक राज्य किया।

पितामह ललितादित्य के समान उसकी इच्छाएं बहुत दूरगामी और विशाल थी, किन्तु यह शौर्य मे उनके समान नहीं था, उसने दो बार दिग्विजय के लिए अभियान किया। पर सफलता उसे नहीं प्राप्त हुई, एक बार तो यह स्वयं नेपाल नरेश द्वारा बन्दी बना लिया गया था। तब

उसके मन्त्री देवशर्मा ने अपने प्राण की बाजी लगाकर उसको बचाया था, अपने को मृत कर उसे सुरक्षित अपनी सेना में पहुँचने का मार्ग प्रशस्त किया था। यह देवशर्मा ललितादित्य के पंचमहाशब्द अधिकारी मित्रशर्मा का पुत्र था, जिसका पिता के समान ही राजा के लिये समर्पित जीवन था। जयार्पीड ने अपना दूसरा नाम विनयादित्य रखा था,[39] सम्भवतः उसने यह नाम पिता की अनुकृति पर अपने यश विस्तार की इच्छा से रखा होगा।, और इस नाम का नगर भी बसाया था। जयापीड का शासन उसकी गतिविधियों के अनुसार तीन भागों में बँटा है। पहले दो भाग दिग्विजय की यात्राओं के हैं, जिनमें वह प्रायः असफल रहा है। तथा तीसरा भाग वह है जहाँ उसके मन में धन के प्रति तीव्र लोभ उदय होता है और उस लोभ के कारण वह अत्याचारी शासक बन जाता है। ब्राह्मणों के शाप और क्रोध की ज्वाला में वह मृत हो जाता है। कश्मीरी राजाओं के चरित् का सम्यक् प्रतिनिधित्व जयापीड में मिलता है।

वह नारी विलास का विशेष व्यसनी था तथा युद्ध अभियान का विफल प्रयास करता था, जिसके पीछे उसके पितामह ललितादित्य का शौर्यपूर्ण चित्र था।

दिग्विजय का पहला अभियान

जयापीड ने प्रथमतः पिताममह के अनुसार पूर्व दिशा की ओर विजय का अभियान किया। विजय का अभियान करते समय उसने अपनी तैयारी के सम्वन्ध मंत्रियों से पूछा। मंत्रियों ने कहा - आपके पितामह की सेना में सवालाख कर्णीरथ (पालकी यान) थे, आपके विजयोद्यम मे हजार ही है। जयापीड ने विचार व्यक्त किया- समय बलवान् होता है और पृथिवी भी संकुचित हो रही

है, इसलिए मैं पितमह की तुलना में छोटा नहीं हो रहा हूँ।[40] इससे यह लगता है कि वह पितामह के समान कीर्ति पाने का अतीवेच्छुक था।

किन्तु उसकी शासन नीति और दूरदर्शिता बहुत घटिया थी। इधर वह दिग्विजय के लिये चला, उधर उसके श्यालक (साले) ने, जिसका नाम जज्ज था, विद्रोह कर कश्मीर के शासन पर अधिकार कर लिया। जब इसका समाचार उसको मिला तब वह राजोचित कोई निर्णय नहीं ले पाया। नीति के अनुसार उसे तत्काल जज्ज का दमन करने के लिये वापस लौटना चाहिये था, अन्यथा जिसका राज्य दूसरे दिन दखल कर लिया हो और वह राजा दिग्विजय का अभियान कर रहा हो, तो यह दिग्विजय का उद्यम न होकर देश निकाला हुआ। जयापीड की कश्मीर लौटने की हिम्मत न हुई। इस समय उत्तर भारत में कोई विस्तृत दृढ़ शासन वाला राज्य भी न था, जिसके कारण सेना लेकर आगे जाने में कोई बाधा पड़ती। इस स्थिति का विवरण कल्हण ने बड़े संक्षेप में किया है। पर जो कुछ वर्णन किया है उससे लगता है कि राजा जयापीड की स्थिति दयनीय हो गई, कश्मीर न लौटना उसकी निःशक्तता थी, वह आशंकित था जज्ज का दमन मैं नहीं कर पाऊंगा।

कल्हण के अनुसार उसके सैनिक स्वामिभक्ति से पराङ्मुख हो गए और वे सेवा छोड़कर स्वदेश लौटने लगे[41]। ठीक भी था, सेना तो राजा के साथ रहती है, कश्मीर का राज्य अब जज्ज के हाथ में था और उसे पराजित करने की हिम्मत अब जयापीड में नहीं थी। जयापीड अब कश्मीर लौट नहीं सकता था, ऐसा लगता है कि जो अधीनस्थ सामन्त (भूपति) उसके साथ युद्ध

अभियान में चल रहे थे, वे भी राजा से पराङ्मुख होकर अपने राज्य की ओर लौट पड़े, यद्यपि यहां कल्हण लिखता है कि जयापीड ने स्वयं उन अधीन भूपतियों को अपने स्वदेश लौटने के लिए विसर्जित कर दिया। और स्वयं अपने इने-गिने (परिमित) सैनिकों के साथ प्रयाग पहुँचा[42]।

यह प्रयाग कौन है, राजतरंगिणी में बहुत स्पष्ट नहीं है - गंगा-यमुना की संगम स्थली प्रयाग है अथवा हरिद्वार के पास स्थित गंगा तट का प्रयाग है। तीन टीकाकारों पं०रामतेज शास्त्री, डॉ०रघुनाथ सिंह तथा रणजीत सीताराम पंडित के अनुसार यह प्रयाग कौन है निश्चित रूप से उनकी टीका में निर्धारण नहीं किया गया है[43], पर लगता है कि वे गंगा-यमुना के संगम प्रयाग को ही मानकर आगे की टीका करते हैं।

आगे जयापीड का दिग्विजय अभियान इस प्रकार हो गया जैसे वह देश का पर्यटन या तीर्थ यात्रा करने निकला हो। उसके साथ थोड़े सैनिक थे। वहाँ पर जयापीड ने गंगा स्नान किया और एक कम एक लाख घोड़ों का दान दक्षिणा-सहित ब्राह्मणो को दिया। इस दान के फलस्वरूप ब्राह्मणों से यह आग्रह किया कि यहाँ से जो गंगा जल बाहर जाया करे उसके पात्र के ऊपर 'श्रीजयापीडदेवस्य' यह मुद्रा अंकित हो, आगे जो इससे अधिक दान करे वह मेरी इस मुद्रा को निवारित कर सकेगा -

संपूर्णमिन्यो लक्षं यः प्रदद्यादत्र वाजिनाम् ।

तन्मुद्रयेयं मन्मुद्रा विनिवार्येत्युदीर्य च ।।

श्री जयापीडदेवस्येत्यक्षरैरूपलक्षितम् ।

दिग्देशगामिनो मुद्रां गांगस्य पयसो ददौ ।।

(तरंग ४ । ४१६ - ४१७)

ऐसा प्रतीत होता है कि इस मुद्रा के लगाए जाने का प्रचलन कल्हण (१२ वीं शती) के काल तक था, क्योकि आगे वह लिखता है कि आज भी उस राजा (जयापीड) की मुद्रा से चिन्हित गंगा जल को पीकर अभिमानी राजाओं के चित्त में उस राजा का प्रताप याद कर पीड़ित करने वाला ताप बढ़ जाता है -

तन्मुद्राङ्कं पयः पीत्वा गाङ्गमद्यपि निर्मलम् ।

चित्ते प्रवर्धते तापो भूपानामभिमानिनाम् ।।

(तरंग ४ । ४१८)

प्रयाग के आगे उसका युद्ध-अभियान समाप्त हो गया। उसने अपने एक विश्वासपात्र दूत से सेना को स्वदेश लौटने की आज्ञा दे दी और स्वयं एकाकी रात्रि में सेना के बीच से निकल गया। अपने अनुकूल स्थान की खोज करते हुए वह गौड़ देश के पौण्ड्रवर्धन नगर में पहुंचा। (पौण्ड्रवर्धन को कुछ लोग वर्तमान वर्दमान जिला कहते हैं।) पौण्ड्रवर्धन का राजा जयन्त था। विभूतिसम्पन्न सुरम्य सुराज्य से सुशासित उस नगर के कार्तिकेय निकेतन में नृत्य दर्शन के लिए प्रवेश किया। यहाँ से उसके काम-विलास (रोमांटिक) जीवन का प्रारंभ होता है।

यहाँ पर में नृत्य करने वाली कमला नामक नर्तकी पर वह अत्यन्त मोहित हो गया। कमला ने भी अपने को जयापीड के लिए समर्पित कर दिया। परन्तु अपने विजय-अभियान का ध्यान

रखकर उसने कमला को सावधान किया, यद्यपि सब प्रकार से कमला को स्वीकृति प्रदान कर दी - कहा, मैं तुम्हारे अकृत्रिम गुणों से खरीदा हुआ तुम्हारा दास हूँ। [44] फिर अपना संकल्प बताया कि बिना विजय का अभियान पूरा किये मैं स्त्री-राग में लिप्त नही होऊँगा, तब तक प्रतीक्षा को। [45]

इसके बाद उस नगर में एक सिंह का उपद्रव शुरू हो गया। नगरवासी उससे भयाक्रान्त थे। यह सूचना भी नर्तकी कमला ने राजा को दी। राजा ने रात्रि में वटवृक्ष के नीचे बैठकर उस सिंह की प्रतीक्षा की, जब सिंह दिखाई पड़ा, राजा उसके ऊपर टूट पड़ा और उस पर केहुनी रखकर सुरिका के तीव्र आघात से उसकी छाती फाड़ डाली। सिंह के मरने की खबर पाकर राजा जयन्त प्रसन्न हुआ और उस सिंह को देखने गया। सिंह के दातों के बीच राजा जयापीड की नामांकित अंगूठी प्राप्त हुई, जिसे देखकर प्रजा में भय भी व्याप्त हुआ कि ऐसा अमानुष कार्य करने वाला राजा के नगर में ही है। नगर के राजा जयन्त ने प्रजा की व्याकुलता दूरकर दी, कहा किसी कारणवश राजा जयापीड एकाकी दिगन्तर में घूम रहे हैं। कदाचित् राजा को यह वृत्तान्त मालूम था, उन्होंनेकहा कि जयापीड ने अपना परिचय राजपुत्र कल्लट कर के दिया है, अब मुझे मालूम हुआ कि वे राजा जयापीड हैं, यह अत्यन्त प्रसन्नता की बात है।

प्रसन्नता की बात यह हुई कि जयन्त को कोई पुत्र नहीं था। उसकी अकेली राजकुमारी कल्याणी थी। उसने कल्याणी का विवाह जयापीड के साथ करने का निश्चय किया। [46] जयापीड को अपने घर ले गया। जयापीड ने अपने अमात्य देवशर्मा के साथ मिलकर, जो उसकी अवशिष्ट सेना की रक्षा कर रहा था, पंच गौड़ राजाओं को विजय किया और उन देशों का स्वामी जयन्त

को ही बना दिया। इसके बाद राजा जयन्त की पुत्री कल्याणी तथा नर्तकी कमला दोनों के साथ विवाह किया। दोनो सुलोचनाओं को लेकर उसने कश्मीर की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में कान्यकुब्ज नरेश को विजय किया।

जब उसने कश्मीर में प्रवेश किया तब जज्ज उसके साथ संग्राम करने के लिए निकल पड़ा। शुष्कलेत्र ग्राम में दोनो का भयंकर युद्ध कई दिन तक चलता रहा। उस समय जज्ज के राज्यशासन से अप्रसन्न ग्रामीणों तथा आटविक सामन्तों ने जयापीड का साथ दिया। श्रीदेव नामक ग्रामचॉडाल ने जज्ज को युद्ध के लिए ललकारा और क्षेपणीय प्रस्तर से मुख पर प्रहार कर उसे मार डाला। कश्मीर राज्य की राज्यश्री पुनः जयापीड को प्राप्त हो गई। उसने अपने सुशासन से सज्जनों का मन हरण कर लिया। मानो राजा का संकल्प पूरा हुआ।

जहाँ पर शत्रु (जज्ज) को विजयकर उसने अपना राज्य प्राप्त किया उस स्थान पर रानी कल्याणी देवी ने कल्याणपुर नगर बसाया, राजा ने महलाणपुर बसाया और वहाँ पर विपुल केशव भगवान् की स्थापना की। रानी कमला ने कमलापुर बसाया। नगरों के बसाने की यह परम्परा कश्मीर राजाओं की रही है। महारानी तो कल्याणी देवी हुई और कमला देवी को महाप्रतिहारपीडा नामक अधिकार प्रदान किया गया।

विद्वानों का समादर और राज्य में विद्याओं का प्रचार

अपने सुशासित राज्य में प्रतिष्ठित होकर जयापीड के मन में विद्वानों और उनकी विद्याओं के प्रति बड़ा आदर प्रकट हुआ। वैसे वह जन्मतः कला और ज्ञान का प्रेमी था, तभी पौण्ड्रवर्धन

नगर में नर्तकी कमला के नृत्त में अनुरक्त होकर उसको समर्पित हो गया था। यहाँ कल्हण लिखते हैं कि जैसे ऋषि कश्यप ने वितस्ता नदी को कश्मीर धरती पर अवतरित किया था वैसे ही राजा जयापीड ने कश्मीर में अवतरित विद्याओं को जो दूर दूर तिरोहित हो रही थीं पुनः कश्मीर में अवतरित और प्रतिष्ठित किया।[47]

दूसरे राज्य से भी विद्वानों को बुलाकर प्रतिष्ठा दी गई। राजाने राजाओं की स्पर्धा को तो नही सहन किया, किन्तु वह अपने साथ विद्वानों की स्पर्धा को सहन कर रहा था। उसे अपने को पण्डित कहे जाने पर विशेष गौरव हो रहा था, उसने क्षीर स्वामी से शब्द विद्या (शब्दानुशासन, महाभाष्य) का अध्ययन कर अपने को पण्डित माना।[48] एक तरह से यह प्रथम राजा भोज था (११ वीं शती में होने वाले धारा के राजा भोज के समान विद्वानें की सभा करने वाला था)। उसके राज्य में राजा शब्द की अपेक्षा पण्डित शब्द की ख्याति अधिक थी। कुछ समय बीतने पर भी पण्डित शब्द 'राजा' की संज्ञा की अपेक्षा अधिक आदरणीय माना जाता रहा है।[49] कल्हण लिखते हैं कि जयापीड ने दूसरे राज्यों भी विद्वानों को बुलाकर अपनी राज्यसभा मे सम्मानित पद दिया। इनमें भट्ट उद्भट को सभापति पद पर रखा था। यह उदभट काव्यशास्त्र के पंडित थे, इन्होने काव्यालंकार सार संग्रह ग्रन्थ की रचना की है जो साहित्य विद्या का आदरणीय ग्रन्थ है। कुट्टनी मत के रचयिता कवि दामोदर गुप्त को अपना मुख्य सचिव बनाया जैसे दैत्यों के राजा बलि ने कवि (शुक्राचार्य) को अपना मंत्री बनाया था। अन्य विद्वान सभासद थे - मनोरथ, शंखदत्त, चटक, सन्धिमान, वामन आदि, ये सभी कवि थे, और किसी न किसी विभाग के मंत्री थे।[50] कवि मनोरथ का उल्लेख ध्वन्यालोक में हुआ है. वामन काव्यलंकार सूत्र के रचयिता है।

भक्तशाला के अध्यक्ष थाक्रिय को भी यह पद उनकी विद्वता के कारण प्राप्त हुआ था।

इनमें से उद्‌भट के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि उनका प्रतिदिन का वेतन एक लाख दीनार था।

विद्वान दीनार लक्षेण प्रत्यहं कृतवेतनः ।

मट्टोऽमुद्‌ उद्‌भटस्तस्य भूमिभर्तुः सभापतिः ।।

(तरंग ४ । ४९५)

यहाँ पर प्रतिदिन एक लाख दीनार वेतन का मतलब समभवतः यह लेना चाहिये कि मन्त्री उद्‌भट को प्रतिदिन एक लाख दीनार व्यय करने का अधिकार दिया गया था।

लेकिन नीति की दृष्टि से यह राजसभा समीचीन नहीं थी जहाँ सभी मन्त्रीगण कवि और कुट्टिनीमत के लेखक हों, यह तो एक तरह से सांस्कृतिक राज्य की अवधारणा थी। जिस राजा का मंत्री कुट्टिनीमत का पंडित है वह राज्य शासन क्या करेगा। राज्य ना दंड - नीति और सुरक्षा का होता है। जयापीड के पतन का यह भी एक कारण था। भविष्य में भी ऐसी राजसभा रचने वाले धाराधीश भोज सफल प्रशासक नही रहे। वर्तमान के भारतीय लोक-तंत्र मे प्रधानमंत्री राजीव गाँधी के पतन (उनकी हार) के कारणों में एक कारण यह भी था कि सिनेमा के एक्टर अमिताभ बच्चन उनके सलाहकार बने थे। प्रशासकों को राजा जयापीड के इतिहास से यह शिक्षा लेनी चाहिये। जयापीड का अन्त में जिस प्रकार घृणास्पद पतन हुआ उससे यही लगता है कि वह स्वयं के विचार से शून्य तथा परनेय बुद्धि था।

जयापीड की अब तक की कहानी ही उसका उज्ज्वल इतिहास है, सम्भवतः अब तक उसके राज्य के पन्द्रह वर्ष बीते होंगे।

इस अवधि में उसने मन्दिर तथा भवन के निर्माण कार्य भी करवायें, जैसा कि कश्मीरी राजाओं का व्यसन था। उसने लंका से पाँच राक्षसों को बुलाकर इस कार्य में सहायता ली, निर्माण करवाये। मय दानव की तरह राक्षस शिल्पकला में कुशल थे। इन निर्माणों में मुख्य थे - सरोवर के बीच जयपुर कोट्ट, बुद्ध की विशाल प्रतिमा तथा जयादेवी की स्थापना, शेषशायी केशव, सरोवर में द्वारावती, जयपुर कोट में मठ (मंत्री जयदत्त द्वारा), अचेश्वर हर (शिव)।[51]

यहाँ एक बात कल्हण ने लोक - उदन्त से सुनकर ही उद्धृत की होगी कि राजा जयापीड का दूत लका में मानवो के मित्र राजा विभीषण से मिला, उनको अपने राजा का आज्ञा लेख दिया, तत्पश्चात् विभीषण द्वारा प्रदत्त पॉच राक्षसो को साथ लेकर कश्मीर लौटा -

प्रियमर्त्यैरामभक्तया नृपाज्ञालेखदायिनम् ।

स्वदेशमनयद्दत्तै रक्षोभिस्तं विभीषिणः ।।

(तरंग ४ । ५०५)

इस कथन में इस लोक - उदन्त की झलक मिलती है कि अव भी विभीषण लंका में राज्य कर रहा है।

बात केवल लोक - उदन्त की ही नहीं है, कवीन्द्र कालिदास भी अपने रघुवंश में लिखते है भगवान् राम ने अयोध्या को छोड़कर अपने मूल अंश (स्वतनु) में अन्तर्हित होने के पूर्व लोक की रक्षा का भार विभीषण और पवन तनय हनुमान को सौंप दिया, दाक्षिणा गिरि (सम्भवतः विन्ध्य पर) विभीषण को प्रतिष्ठित होने को कहा तथा उत्तर गिरि (हिमवान्) पर हनुमान् जी को। [52]

दिग्विजय का दूसरा अभियान

पुनः जयापीड ने युद्ध सामग्री इकट्ठा की, हाथियों की विशाल सेना सजायी और दिग्विजय अभियान में पूर्व की ओर अपनी सेना लेकर चल पड़ा, पूर्व की ओर उसकी सेना ऐसे ही चली, जैसे भगीरथ हिमालय से गंगा को लेकर पूर्व समुद्र की ओर चले थे -

संप्रविष्टापि पूर्वाब्धिमविच्छिन्ना हिमाचले ।

भगीरथस्य गंगेव रेजे तस्यानुगाः चमूः ॥

(तरंग ४ । ५१५)

कल्हण के इस कथन में कालिदास के 'रघुवंश' की छाया बहुत स्पष्ट है, रघु के युद्ध - अभियान का निम्न श्लोक कल्हण का उपजीव्य है -

स सेनां महतीं कर्षन् पूर्वसागरगामिनीम् ।

बभौ हरजटा भ्रष्टां गंगामिव भगीरथः ॥

(रघुवंश ४ । ३२)

उस जयापीड की सेना में प्रमुख रूप से प्रचण्ड (उग्र) चाण्डाल तथा मुम्मुनि तुखार के रहने वाले सामन्त प्रमुख सरदार यामिक थे। रात्रि में ये बाहर राजा की जयकार करते हुए चल रहे थे। [53] इस विजय अभियान में ही उसने अपने को विनयादित्य नाम से प्रख्यापित किया।[54]

किन्तु यह युद्ध - अभियान जयापीड के विपरीत सिद्ध हुआ। पूर्व में प्रथम राजा भीमसेन का राज्य था, यह राजा जज्ज के भाई सिद्ध का मित्र था। उसने पहले चुपचाप जयापीड को अपने राज्य मे घुंस आने दिया और बाद में उसे वन्दी बना लिया। किसी प्रकार लूता रोग के बहाने उसे वहाँ से छुटकारा मिला।[55]

तदनन्तर जब वह आगे बढ़ा तब नेपाल - नरेश मायावी अरमुडि से इसकी मुठभेड़ हुई और उसने षड्यन्त्र - पूर्वक जयापीड को बन्दी बनाकर कालवाण्डिका नदी (सम्भवतः बिहार में बहने वाली गण्डक नदी) के तट पर ऊँचे पर बने पत्थर की कोठरी (वेश्य) में डाल दिया। तथा पहरेदार लगा दिये।[56]

इसके बाद सेना किंकर्तव्यमूढ़ हो गयी, राजा जयापीड तो किंकर्तव्यविमूढ़ था ही, कल्हण लिखता है कि अरमूडि ने इस प्रकार जयापीड को बन्दी बनाकर छिपाकर रखा कि उसे शशांक (चन्द्र) तथा अर्यमा (सूर्य) भी नहीं देख सकते थे -

कलावत्सु शशाङ्कोऽपि तेजस्विष्वर्यमाऽपि तम् ।

न ददर्श यथा श्रीमान् स ररक्ष तथा नृपः ॥

(तरंग ४ । ५४८)

ऐसी अत्यन्त शोचनीय विषम परिस्थित में उसका मंत्री देवशर्मा ही अपने राजा के उद्धार के लिए नीति और कूटनीति का मन्थन करता रहा तथा किस प्रकार अरमूडि को प्रसन्न कर सन्धि कराने का बहाना लेकर राजा जयापीड से एकान्त में मिला, और अपने प्राण देकर राजा को बन्दी खाने से छुड़ाया, जिससे जयापीड कालगण्डक नदी का धारा को तैर कर उस पार अपनी सेना के बीच पहुँच सका, यह लम्बी तथा साहस - पूर्ण कहानी मन्त्री देवशर्मा का अपने राजा को बचाने के लिए किया गया प्राणोत्सर्ग है जिसका विवेचन आगे देवशर्मा के चरित में किया जायेगा।

पत्थर के वेश्म पर जो प्रहरी पहरा दे रहे थे, उनको भी राजा जयापीड के निकल जाने का पता नहीं चला। जब जयापीड अपनी सेना में पहुँचकर युद्ध का डंका बजाकर नेपाल नरेश की राजधानी को तहस - नहस करने लगा तब कहीं वे प्रहरी इस षड्यन्त्र को जान पाये। नेपाल राज्य नष्ट हो गया। तदन्तर उसने किसी स्त्री-राज्य को विजय किया जहाँ उसे कर्णा श्रीपाट संज्ञप अमोल वस्त्र प्राप्त किये।[57] युद्ध - अभियान के लिए उसने चल कोश की स्थापना की, सम्भवतः उसकी सेना समुद्र तक गयी और उसने पुनः कश्मीर मण्डल मे प्रवेश किया और युद्ध मे प्राप्त लक्ष्मी का उपभोग किया।

उसके बाद एक घटना घटी। स्वप्न में उसको महापद्मनाभ दिखायी पड़ा। जिसके बताये अभिज्ञान के अनुसार राजा ने ताम्रधातुस्यन्दी ताम्राकर पर्वत को प्राप्त किया। उस ताम्र की स्वनामांकित एक कम सौ करोड़ दीनार मुद्रायें ढलवायीं।[58] इस प्रकार उसने दूसरे राजाओं के

कोषागार को बहुत पीछे छोड़ दिया। दूसरे राजाओं के लिए यह समस्या हो गयी कि वे जयापीड की समानता कैसे करें।

जयापीड का पतन

ताम्राकर पर्वत की प्राप्ति और सौ करोड़ मुद्राओं के ढाले जाने के बाद राजा जयापीड की मनोवृत्ति विकृत हो गयी, उसको धन का बड़ा लोभ हो गया, उसने अपने पितामह पराक्रमी ललितादित्य की शासन पद्धति का मार्ग त्याग दिया और धन कैसे अर्जित किया जाय इसकी चिन्ता करने लगा।

जयापीड ने अपने शासन - तंत्र में कार्य करने- वाले कायस्थों की सलाह पर राज्य की प्रजा को दण्डित करना आरम्भ किया। कायस्थों ने कहा कि दिग्विजय के लिये व्यर्थ कष्ट उठाने से क्या लाभ? आप अपने देश से ही धन अर्जित करें।[59]

कल्हण के इस कथन से इस बात की पुष्टि होती है कि कश्मीरी नरेश हूणों, मुगलों की तरह लूटेरे राजवंश के ही थे, जिनका लक्ष्य आक्रमण और लूटपाट था, प्रजा की सुरक्षा सुख और शान्ति नहीं।

फिर तो जयापीड ने धन के लिए अनीति के पथ पर निर्भीक चरण रख दिये। किसी शिवदास नामक अधिकारी ने उसको इस ओर उत्साहित किया तथा सर्वस्व हारी कायस्थ उसके बहुत हितैषी बन गये थे उनकी सलाह पर वह सारा काम कर रहा था। लोभ ने राजा की बुद्धि

का अपहरण कर लिया। [60] स्थिति यह हो गयी कि प्रजा को लूट कर राज्य कर्मचारी कायस्थ कुछ थोड़ा धन राजकोष में जमा करते थे और सारा धन स्वयं पचा ले जाते थे, और इस प्रकार प्रजा को लूटने-वाले ये कायस्थ राजा को बहुत प्रिय लग रहे थे।[61]

इस क्रूर राजा ने तीन वर्ष तक लगातार किसानों के भाग सहित उनके सारे शारदीय अन्न को जबरदस्ती ले लिया। किसानों के खाने के लिये भी नहीं छोड़ा।[62]

उसकी इस क्रूरता का ब्राह्मणों ने विरोध किया तो उसने उनका दमन करना शुरु कर दिया। ब्राह्मणों में हाहाकार मच गया और वे देश छोड़ने लगे। उसने आदेश दिया कि एक दिन में निन्यानवे ब्राह्मण मारे जायें तो मुझे सूचित किया जाय।[63] राजा ने तूलमूल (जलस्रोत का रमणीय स्थान) में ब्राह्मणों के अग्रहार का अपहरण कर लिया और एक कम सौ (निन्यानवे) ब्राह्मण चन्द्रभागा नदी के जल में डूब कर मर गये (अथवा जल में डूबा कर मार डाले गये)। कल्हण यह भी लिखता है कि वहाँ प्रतिहारों के हाथ से मारे जाते हुए ब्राह्मण क्रन्दन कर रहे थे।[64]

फिर तो इसके बाद राजा तथा ब्राह्मणो में आमने सामने वाक् कलह हुआ। ब्राह्मणों ने कहा - मनु, मान्धाता, राम आदि महान राजा हुए, पर ब्राह्मणों को कभी ऐसा अपमान नहीं सहना पड़ा। राजा ने डॉट कर कहा कि भिक्षा के कण पर जीने- वाले तुम ब्राह्मणो को अभिमान का बुखार चढा हुआ है और अपने को ऋषियों के तुल्य प्रभाव वाला समझते हो। ब्राह्मणों ने कहा - राजन्! यह तो युग का प्रभाव है, यदि आप राजा है तो हम लोग ऋषि क्यों नहीं है? राजा ने दर्प से प्रश्न किया - तो क्या तुम लोग तपोनिष्ठ विश्वामित्र, वशिष्ठ या अगस्त हो? ब्राह्मणों

ने कहा! यदि आप हरिश्चन्द्र, त्रिशंकु अथवा नहुष है तो विश्वामित्र आदि में से हम भी है। (तरंग ४ । ६४१-६४६) इस वार्तालाप में कोई ब्रह्मतेजोनिधि इट्टिल नामक ब्राह्मण अगुवाई कर रहा था!

'इट्टिलाख्यस्तमाह स्य ब्रह्मतेजोनिधिद्विजः ।।'

(तरंग ४ । ६४५)

विवाद आगे बढ़ा और ब्राह्मणों के क्रोध का ब्रह्मदण्ड राजा पर गिरा, उसका शरीर जैसे आरी से काट दिया गया हो, इस प्रकार घावों तथा व्रणों से भर गया, अनेक रात्रियों तक वह इस गहरी पीड़ा मे कराहता रहा तथा कष्ट से उसके प्राण शरीर मे बाहर हुए।[65]

जयापीड जब मरा उसकी माता अमृतप्रभा जीवित थी। उन्होंने अपने पुत्र को पापी माना तथा उसके उद्धार के लिए 'अमृतकेशव' की स्थापना की -

कृतपाप तमुद्दिश्य विपन्नामृतप्रभा ।

मृतोधाराय तन्माता व्यधतामृत्तोकेशवम् ।।

जो भी हो कश्मीरी राजाओं में धन का लोभ सीमातीत था। उनके इस लोभ ने ही उनके शासन - तंत्र मे काम करने वाले- कायस्थों को लूट करने की खुली छूट दे रखी थी। प्रजा के

सुख सुरक्षा तथा शान्ति की उपेक्षा कर धन की लूट की ऐसी इच्छा दैत्य, म्लेच्छ अथवा असुर शासन का लक्षण है। मनुस्मृति आदि में ऐसे धन-संचय का निर्देश नही है, वहाँ प्रजा का सुख राजा का पहला कर्तव्य है। शुक्र नीति में यद्यपि येनकेन प्रकार से धन संचय का अधिकार राजा को दिया गया है लेकिन वहॉ भी वह धन सेना तथा यज्ञ आदि कार्यों में लगाने के लिये निर्देश है। शुक्राचार्य यह भी कहते है कि जो राजा कोष-संग्रह सेना के लिये, प्रजा की रक्षा के लिये तथा यज्ञ के लिये करता है उससे लोक और परलोक दोनो बनते है, इनमे भिन्न कार्य के लिये किया गया कोष-संग्रह दुःखप्रद होता है।[66]

कोई भी स्मृति- ग्रन्थ अथवा अर्थशास्त्र (राजनीति शास्त्र) राजा को मनमाने ढंग से धन बटोरने की बात नहीं कहता। आचार्य शुक्र ने यद्यपि 'येनकेन प्रकारेण' कोष संग्रह की बात कही है। लेकिन उसके व्यय के सम्बन्ध में सावधान कर दिया है कि राजा उस कोष को अपने विलास के लिये नहीं खर्च कर सकता, वह कोष सेना रखने, प्रजा की रक्षा तथा यज्ञ के कार्य में ही व्यय होना चाहिये।

जयापीड के वर्णन में कल्हण गणना के बारे में एक विशेष उल्लेख बार बार करता है कि पूर्ण संख्या एक से कम हो जैसे एक कम सौ - 'विप्राणां शतमेकोनमेका-हंन विपघते ।' अथवा एक कम एक लाख अश्वों का दान-'वाजिनः स मनोजवान् । द्विजेभ्यो लक्ष्यमेकोनं प्रददौ भूरि दछिणम्।।' एक कम सौ ब्राह्मण जल में डूब मरे - 'विप्राणां शतमेकोनर्थणोज्दले मृतम्।'

अवन्तिवर्मा

अवन्तिवर्मा उत्पलवंश का प्रभावशाली कीर्तिमान् राजा था, यह सुखवर्मा का पुत्र था। शूर नामक मन्त्री ने उत्पलापीड तो उसकी अयोग्यता के कारण राज्यच्युत कर अवन्तिवर्मा को नृपतिपद पर अभिषिक्त कराया था। अवन्तिवर्मा संवत् ३६३१, शक ७७७ (ईस्वी सन् ८५५) में राजा हुआ, उसने २६ वर्ष राज्य किया और लौकिक संवत् ३६५६ (ईस्वी सन् ८८३) में इसकी मृत्यु हुई।

अवन्तिवर्मा राजतरंगिणी के कश्मीरी राजाओं में मनुस्मृति मे निरूपित राजा के गुणों से युक्त था। उसमें लोभ नहीं था, प्रजा के सुख की चिन्ता की, उसका चरित विलासी नहीं था, उसके यहॉ विद्वानों का आदर था। उसने अपने राज्य के विप्लवों और विरोधियों को विजित एवं शान्त कर रखा था।[67] उसका मंत्री शूर तो शैव था, जिसने उसको राज्य प्राप्त करने में सहायता की थी, किन्तु आवन्तिवर्मा पूर्णरूप से वैष्णव था, वैष्णव धर्म और वैष्णव भावभक्ति का प्रसार कश्मीर में पहले से था, कितने मन्दिरों की प्रतिष्ठा विष्णु के ही विभिन्न रूपों-प्रतिमाओं को लेकर हुई थी। आवन्तिवर्मा उनमें विशेष था, वह परम वैष्णव था। जीवन के अन्त समय में उसने भगवद्गीता का पाठ सुना और वैष्णव धाम का ध्यान करते हुए शरीर छोड़ा।[68]

चौथे तरंग के अन्त में आवन्तिवर्मा के राज्याभिषेक का वर्णन है और पॉचवी तरंग में छन्द संख्या २ से १२७ तक उसके राज्य-काल का वर्णन है।

अवन्तिवर्मा के राज्यकाल के तीन प्रमुख सन्दर्भ हैं -

(I) विरोधियों का दमन

(II) कवियों और विद्वानों का राजसभा में सम्मान

(III) सुय्य द्वारा वितस्ता का जल - संशोधन कर किसानों की भूमि की सिंचाई का विस्तृत प्रबन्ध।

निष्कंटक राज्य

अवन्तिवर्मा भाग्यशाली राजा था, उसके विरोधी शक्तिमान नहीं थे, कुछ समय पूर्व ही उत्पलवंश ने निःशक्त ककौटक वंश से राज्यसिंहासन छीन लिया था। अवन्तिवर्मा के सामने जो भी विप्लवकारी थे, उसने उनको विना बहुत उद्योग किये सहज ही शमन कर दिया, अथवा यह भी हो सकता है कि अवन्तिवर्मा का प्रजा पर प्रभाव बढता गया और प्रजा के अनूकूल होने से अपने आप विरोधी अस्त हो गये। इस वस्तु स्थिति का इतिहास कल्हण ने दो छन्दो में दिया है।[69]

अवन्तिवर्मा प्रजा को बहुत प्रिय हो गया था। ब्राह्मणों में उसकी लोकप्रियता चरम कोटि पर थी और ब्राह्मण प्रजा के सब प्रकार से अगुआ थे। ब्राह्मण उससे बहुत अपनत्व रखते थे, राजतरंगिणी के एक उद्धरण के अनुसार ब्राह्मण उसे राजन् के स्थान पर अवन्तिवान् का सम्बोधन भी करते थे, कल्हण ने लिखा है -

साधु भूपेति वक्तव्ये हर्षान्निर्गौरवं द्विजः ।

साध्वन्तिन्निति वदन्नेकः प्रापाञ्जलीन् बहून् ।।

(तरंग ५ । १७)

अर्थात् एक ब्राह्मण ने अत्यन्त प्रसन्न होकर राजा को जहाँ 'साधु भूप ।' यह सम्बोधन करना चाहिये था वहाँ गौरव रहित (केवल नाम लेकर) 'साधु अवन्तिन्' यह सम्बोधन किया, राजा इस आत्मीयता से बहुत प्रसन्न हुआ और उस ब्राह्मण को कई अंजलि द्रव्य प्रदान किया।

राजसभा में कवियों और विद्वानों का सम्मान

राज्य निष्कंटक हो जाने पर राजा अवन्तिवर्मा ने सहृदयता से अपनी राजसभा में विद्वानों और कवियों के आगमन का अभिनन्दन किया। लक्ष्मी के साथ सरस्वती की प्रसन्नता का इतिहास अवन्तिवर्मा के राज्य में लिखा गया। और वह ऐसा इतिहास था, जिसने पूरे देश को विद्या के इतिहास में प्रभावित किया। कल्हण लिखता है कि सत्कार से समृद्धिशाली विद्वानों ने अच्छे वाहनों पर आरूढ़ होकर राजा की सभा में प्रवेश किया।[70] मन्दिर भी विद्या के अध्ययन - अध्यापन के लिए पवित्र स्थान हो गये थे। शूरमंत्री के राजदौवारिक महोदय ने मन्दिर बनवाकर महोदय स्वामी की प्रतिष्ठा की थी, उसने वहाँ पर शमट उपाध्याय को व्याकरण पढ़ाने के लिए व्याख्याता पद प्रदान किया था।[71] सीधे राजा अवन्तिवर्मा की राजसभा में जिनका प्रवेश था, वे प्रसिद्धि प्राप्त विद्वान् थे - मुक्ताकण, शिवस्वामी, कवि आनन्दवर्धन और रत्नाकर।[72] इन चारों विद्वानों की कवि के रूप ख्याति अवन्तिवर्मा के राज्य में थी। मुक्ताकण और शिवस्वामी का उल्लेख क्षेमेन्द्र

ने अपने 'कवि-कण्ठाभरण' में किया है और इनके पदों को उद्धृत किया है। रत्नाकर हरविजय महाकाव्य के प्रणेता है। क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रन्थ 'औचित्य विचार चर्चा' तथा सुवृत्त तिलक में आनन्दवर्धन तथा रत्नाकर को सन्दर्भित किया है- रत्नाकर को कवि रूप मे तथा आनन्दवर्धन को 'ध्वन्यालोक' के प्रणेता आचार्य के रूप में उक्त चारों कवियों में आनन्दवर्धन तथा रत्नाकर की ख्याति संस्कृत-जगत् में अमर रचनाकार के रूप में है।

आनन्दवर्धन साहित्य शास्त्र के मूर्धन्य आचार्य माने जाते है, उनका प्रणीत ग्रन्थ ध्वन्यालोक तथा उस पर अभिनव गुप्त की लोचन टीका साहित्य जिज्ञासुओं के लिये अमृत स्रोत का कार्य करते है। किन्तु यहां राजतरंगिणी मे कल्हण ने आनन्दवर्धन के साथ विशेष रूप से 'कवि' विशेषण का प्रयोग किया है - कविआनन्द वर्धनः। ऐसा प्रतीत होता है कि इन चारों विद्वानों ने अवन्तिवर्मा की प्रशंसा में काव्य-रचनाएं की होंगी। जो आज उपलब्ध नहीं है, आनन्दवर्धन की भी ख्याति राज सभा मे कवि के रूप में ही रही, यद्यपि वे साहित्य के नवोन्मेषकारी आचार्य थे। 'ध्वन्यालोक' के प्रसिद्ध विश्लेषक और अनुसंधान कर्ता डॉ० सुरेश चन्द्र पान्डेय ने भी अपने ग्रन्थ 'ध्वनि सिद्धान्त : विरोधी सम्प्रदाय : उनकी मान्यताएँ' में आनन्दवर्धन को यशस्वी कवि माना है, वे लिखते हैं - "ध्वनि-सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य आनन्द वर्धन केवल एक उच्चकोटि के लक्षणकार ही न थे अपितु एक सहृदय एवं प्रतिभा सम्पन्न कवि भी थे, अतएव उन्होने काव्य का मूल्याङ्कन नितान्त नूतन दृष्टि से किया - ऐसी दृष्टि जो कि एक मूर्धाभिषिक्त सहृदय को ही प्राप्त हो सकती है। इस क्षेत्र में दण्डी, भामह, वामन, उद्भट आदि प्राचीन आलंकारिको की दृष्टि से उनके कवि - हृदय को तोष न मिला, फलतः उन्होने एक अभूतपूर्व दिशा का उन्मीलन कर काव्य

- जगत् मे एक नया आन्दोलन उपस्थित किया।"[73]

एक तरह से अवन्तिवर्मा की सभा में विद्वानों और कवियों के सम्मान की परम्परा एक आचार ग्रहण कर चुकी थी। राजा के मन्त्री शूर का बन्दी (स्तुति गायक) जिसका नाम कृतमन्दार था, कवियों के सम्मान को ही लक्ष्यकर निम्नलिखित आर्या का पाठ, करता रहताथा, (कल्हण ने अपने अनुष्टुयों के बीच इस आर्या को उसके कृतित्व के रुप में उद्धृत किया है) -

अयमवसर उपकृतये प्रकृतिचला यावदस्ति सम्पदियम् ।

विपदि सदाऽभ्युदयिन्यां पुनुरुपकर्तुं कुतोऽवसरः ।।

अर्थात् यह ऐश्वर्य सदा स्थिर नहीं रहेगा, चलायमान है, जब तक ऐश्वर्य है, लक्ष्मी है तब तक ही यह अवसर है कि दूसरे को अपने उपकार से उपकृत कीजिए। अन्यथा विपत्ति के आने पर (जो प्रायः आ जाती है) उपकार करने का पुण्यावसर कहाँ रहेगा?

यह भी विचित्र बात थी कि मंत्री शूर की वधू का नाम काव्य देवी था। शूर शैव था। काव्य देवी ने सुरेश्वरी क्षेत्र में काव्य-देवीश्वरी की स्थापना-प्रतिष्ठा की थी।[74] इसमें सन्देह नहीं है कि वधू द्वारा काव्य रचना किये जाने के कारण ही उसका नाम काव्यदेवी पड़ गया हो, अन्यथा ऐसा नाम होने की संगति नहीं बैठती।

कर्कोटक वंश के शासक मम्म और अन्य अधिकारी उत्पलक में भयानक संग्राम राज्य के

लिए हुआ था। यह बात आवन्तिवर्मा के राज्य प्राप्त होने के तीन वर्ष पूर्व की घटना है। उत्पलक का पुत्र सुखवर्मा और सुखवर्मा का पुत्र अवन्तिवर्मा था। मम्म और उत्पलक के भयानक युद्ध को लेकर शंकुक ने 'भुवनाभ्युदय' काव्य की रचना की थी।[75] शंकुक भरत के रस सूत्र के व्याख्याताओं में भी है, इसका उल्लेख अभिनवगुप्त ने नाट्यशास्त्र की अपनी टीका अभिनव भारती में किया है।[76]

ऐसा प्रतीत होता है कि कश्मीर की राज्य- सभा राजा अवन्तिवर्मा के पूर्व से ही कवियों-विद्वानों के सम्मान की परंपरा संजोए हुए थी।

सिंचाई के लिए वितस्ता नदी का परिशोधन

अवन्तिवर्मा के राज्य की बड़ी उपलब्धिवितस्ता नदी के रुद्ध प्रवाह को हटा कर कुल्याएँ निकाल कर सिंचाई की बृहत् योजना है। इस योजना को कार्यान्वित करने वाला भूविशेषज्ञ, आज की भाषा में अभियन्ता (इंजीनियर) एक सुय्य नामक व्यक्ति था जिसके कुल का पता नही था, राजमार्ग बटोरने वाली चाँडालिन ने एक दिन प्रातः रथ्या के किनारे एक बालक को मिट्टी के पात्र में पड़ा हुआ पाया था। उसने उसका पालन पोषण किया, उसका सुय्या था, उसी के नाम पर बालक का नाम सुय्य पड़ गया।[77] सुय्य ने अपने को शिक्षित किया तथा किसी गृहपति के यहाँ बालकों को पढ़ाने का कार्य करने लगा।[78]

उस समय वितस्ता नदी में यक्षदर प्रदेश (वर्तमान धारगुल) के निकट वितस्ता नदी के प्रवाह

में दोनो तटों पर स्थित पर पहाड़ की शिलाएँ लुढ़क कर जल की धारा को इस प्रकार अवरुद्ध किए थीं कि प्रवाह विपरीतगामी हो जाता था और जब प्रवाह बढ़ता था तब प्रवाह का जल गावें में फैल कर जलप्लावन का दृश्य उपस्थित कर देता था[79] इस जल-विप्लव के रहस्य को सुय्य भली भॉति समझ रहा था पर अपनी इस बुद्धि का उपयोग विना द्रव्य के कर नहीं पा रहा था, यह वात उसने गोष्ठियों में कई वार कही।[80] गुप्तचरों से यह वार्ता सुनकर राजा ने उसे बुलाया और पूछा, राजा से भी उसने यही बात कही कि यदि मेरे पास धन हो तो मैं वितस्ता के प्रवाह को ठीक कर दूंगा और उस जल को बाहर निकालने का मार्ग बना कर सिंचाई की व्यवस्था कर दूंगा। राजा अवन्तिवर्मा ने उसे राजकोष से दीनार के भाण्ड दिए, उन भाण्डो को लेकर वह मडव राज्य के नन्दक ग्राम में पहुँचा, यह नन्दक ग्राम वितस्ता नदी के बढ़े हुए जल में डूबा था (तरंग ५ । ८५)। उसने वहीं यक्षदर देश (स्थान) में अंजली में उठा-उठा कर दीनार जल में फेंक दिए।

गांव-वालो ने सुय्य के द्वारा इस प्रकार जल में निक्षिप्त किए जाते दीनारों को देखा बेचारे ग्रामीण दुर्भिक्ष से पीड़ित थे। वे जल में घुस पड़े और शिलाओं को उठा उठा कर दूसरी ओर करते हुए दीनारों की खोज करने लगे। तीन दिन मे ही शिलाओं के हट जाने से वह सारा जल निकल गया । फिर उसने श्रमिको द्वारा एक स्थान पर शिलाओं के बांध से वितस्ता को बंधवा दिया[81] । फिर तो वितस्ता वेग से बहने लगी । और जहॉ अब तक जल भरा रहता था , जम्वालों से भरी, जिसमे मछलियाँ नाच रही थी, काली भूमि खेती योग्य निकल आयी [82]। सुय्य ने जल से डूबी भूमि मे जहाँ-जहाँ प्रवाह का वेध (गहराई) देखा उस-उस ओर से वितस्ता के जल

निकलने के नये प्रवाह बना दिये। इस प्रकार वितस्ता अनेक स्रोतों में विभक्त होकर शोभित हुई, कल्हण ने इसकी उपमा अनेक फणों वाली पन्नगी से दी है -

मूलस्रोतोऽग्य निष्ठचूत भूरिस्रोता बभैसरित् ।

एकमोगाश्रयानेक फने वासित पन्नगी ।।

(तरंग ५ । ६६)

वितस्ता के अनेक स्रोतो में विभक्त हो जाने से जल-विप्लव का संकट दूर हो गया।

सुय्य के इस उपक्रम से सिन्धु और वितस्ता का जो संगम पहले वैन्यस्वामी के निकट होता था, वह अब नगरोपान्त में होने लगा। संगम के दोनों तटों पर फलपुर और परिहासपुर नगर हैं, इनमें क्रमशः विष्णु स्वामी और वैन्य स्वामी की प्रतिष्ठा है। सुय्य ने भी यहाँ योगशायी हृषीकेश विष्णु की प्रतिष्ठा की थी।

सुय्य ने सात योजन पर्यन्त पत्थरों के सेतु से बाँध कर महापद्मसरोवर के जल को नियन्त्रित कर दिया, वितस्ता की धारा उस महापद्मसरोवर से निकल कर आगे जाती है जैसे धनुष से बाण। इस प्रकार सुय्य ने जल- विप्लव को दूर कर नये गाँव बसा दिये, यह कार्य वैसा ही हुआ जैसे आदिवाराह ने समुद्र से पृथिवी का उद्धार किया था -

उद्घृत्य सलिलादुर्वी मे वमादिवराहवत् ।

अनेकजन संकीर्णान् ग्रामान् नानाविधान् व्यधात् ।।

(तरंग ५ । १०५)

सुय्य ने भूमि की परीक्षा भी की, तदनुसार सिंचाई का अनुपात निश्चित किया, तथा अदेवमातृक ग्रामों को जल सींचने की व्यवस्था से हराभरा कर दिया। (तरंग ५ । १०४) अब चारों ओर हरे-भरे खेत नजर आते थे।

कल्हण सुय्य की प्रशंसा करते हुए लिखता हैं कि जो सत्कार्य विष्णु ने चार जन्म में सिद्ध किये थे, सुय्य ने उसे एक ही जन्म में सिद्ध कर दिया। कश्मीर में अन्न की उपज इतनी अधिक होने लगी की, जो एक खारी अन्न सुभिक्षकाल में कश्मीर में २०० दीनार में मिलता रहा, अब वह एक खारी धान्य सुय्य की सिचाई व्यवस्था से धान्य की विपुल उत्पत्ति हो जाने से केवल ३६ दीनार में मिलने लगा। [83] वितस्ता के जल से जो भूमि, समुद्धृत हुई उस पर अनेक ग्रामों (सहस्र) की बस्तियां बस गई।

सुय्य द्वारा वितस्ता का जल संशोधन और सिंचाई व्यवस्था अवन्तिवर्मा के राज्यकाल की सबसे बड़ी उपलब्धि थी। भारतीय मान्यता मे राजा को विष्णु का अंश कहा जाता है, अवन्तिवर्मा ऐसा ही था, वह परम वैष्णव था जब कि उसका मंत्री शूर परम शैव था, पर दोनों के विचारों में कभी टकराहट नहीं हुई। वह संयमी था, जितेन्द्रिय राजा के राज्य में ही प्रजा सुखी रहती है और राज्य अकण्टक रहता है। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में यह बात कई बार दुहराई है और बड़े विश्वास के साथ यह कहा है कि जितेन्द्रिय होकर ही जामदग्न्य, अम्बरीष और नाभाग ने

चिरकाल तक पृथिवी का भोग किया और राजा के अजितेन्द्रिय होने पर कितने राजवंश तथा राष्ट्र दोनो का विनाश हो गया।[84] कल्हण लिखता है कि अवन्तिवर्मा के समय कश्मीर में कृतयुग (सत्ययुग) उतर आया था और इस राजा ने मान्धाता के समान पृथिवी की रक्षा की।[85]

अवन्तिवर्मा के राज्य में किसी दोष का दर्शन कल्हण ने नहीं किया है। अवन्तिवर्मा का चरित एक जितेन्द्रिय विष्णु के अंशभूत सच्चे अर्थ में राजा का चरित है।

हर्षदेव

हर्षदेव कश्मीर का ऐसा राजा है जो कश्मीरी राजाओं के लोभी, विलासी, अनैतिक तथा परमेय बुद्धि चरित का पूरा प्रतिनिधित्व करता है। राजतरंगिणी के रचयिता कल्हण के पिता चम्पक (चण्पक) इस राजा के सलाहकार अथवा अमात्य रहे हैं अतः इसके सम्बन्ध में समग्र प्रामाणिक जानकारी कल्हण को रही है और उसने अतिविस्तार से जिन बातों को ऐतिहासिक प्रबन्ध की दृष्टि से केवल २ छन्दों में लिखकर समाप्त कर देना चाहिए उनको भी कम से कम २० छन्दों में विस्तार करते हुए - हर्ष के उत्थान-पतन की घटनाओं का विवरण दिया है। विवरण में काव्यात्मकता है, उपमाओं उत्प्रेक्षाओं का प्रयोग है तथा नीतिगत अनेक सूक्तियॉ हैं। यह सारा वर्णन राजतरंगिणी की सातवीं तरंग में छन्द संख्या ६०६ से छन्द १७२८ तक है।

हर्ष की राज्यप्राप्ति की घटना बड़ी आकस्मिक है इसका पिता कलश मरणासन्न अवस्था में पड़ा है, इसके पूर्व षड़यंत्रकारी मन्त्रियों की दुर्मन्त्रणा से उसने पुत्र हर्ष को कारागार मेंडाल दिया था। हर्ष के गुण और व्यक्तित्व से सारी प्रजा प्रभावित थी। दुर्मन्त्रणा करने वाले कुछ मंत्री यह नहीं चाहते थे कि हर्ष को राज्य प्राप्त हो और उन्होंने राजा से झूठी शिकायत करके हर्ष को कारागार में डलवा दिया था, कलश को यह विश्वास हो गया था कि हर्ष मेरा वध कर राजा बनना चाहता है। मृत्यु आसन्न होने पर कलश को बड़ी हार्दिक वेदना हो रही थी कि वह हर्ष को बुलाकर उससे बात करे, उसने हर्ष को कारागार से निकाल देनें को भी कहा, पर मन्त्रियों ने उसे पूरा नहीं होने दिया और उसके भाई उत्कर्ष को राजा बनवा दिया। कलश विना हर्ष को

देखे ही मृत्यु को प्राप्त हुआ। उत्कर्ष गजसिंहासन पर बैठा। उत्कर्ष नितान्त लोभी था। उसके राजसिंहासन पर बैठते ही घटना-क्रम बड़ी तेजी से घटित होने लगे। हर्ष का अतिविश्वस्त सलाहकार प्रयाग हर्ष को कारागार से छुड़ाने के लिऐ प्रयत्नशील हुआ, उसने हर्ष के दूसरे भाई विजयमल्ल से मिलकर हर्ष को कारागार से मुक्त कराने का प्रयान शुरु कर दिया।[८५क]

विजयमल्ल ने उपद्रव शुरु कर दिया, गजशाला और अश्वशाला में आग लगा दी। उत्कर्ष समझ नहीं पा रहा था कि वह हर्ष का क्या करे, उसके मंत्री नोनक तथा विश्वासभट्ट का कहना था कि हर्ष का वध करवा दे तो सारा मामला शान्त हो जायगा। उत्कर्ष ने ठक्खुर सैनिकों को कारागार में हर्ष के पास भेजा। इसके बाद लोहर सैनिकों को अपना आदेश पालन करने के लिए वहाँ भेजा, भेजते समय उसने दो अँगूठी दिखायी और यह कहा कि एक अंगूठी हर्ष के वध का आदेश होगी तथा दूसरी हर्ष को छोड़ देने का आदेश होगी, सैनिकों से कहा कि तुम लोग दोनों अंगूठियों को पहचान लो, जो अँगूठी भेजूँगा उसी के अनुसार काम करना। लोहर सैनिक हर्ष के पास पहुँच गए। हर्ष अपने जीवन के बारे में अनिश्चित था, कुछ भी हो सकता था, तो भी उसने सभी लोहर सैनिकों को, जिनको वह पहचानता था, नाम ले लेकर उनका हालचाल पूछा, तथा सब से अत्यन्त व्यवहारिक और मधुर वाणी में बातचीत की। सबको अपने हाथ से तम्बाकू दिया। हर्ष के इस सत्कार से उन सैनिकों ने हर्ष के ऊपर शस्त्र प्रहार की इच्छा मन से त्याग दी और उसकी सहानुभूति में डूब गए।[86] यहाँ पर हर्ष ने मधुरवाणी की बड़ी प्रशंसा की है, और कहा है कि मधुर वाणी कामधेनु गाय के समान होती है, वह सब प्रकार के अनर्थों को दूर कर देती है तथा विरोधियों को भी मित्र बनाकर अनुकूल मार्ग का निर्माण करती है -

घत्ते श्रियं सृजति कीर्तिमघं लुनीते

मित्रत्वमानयति हन्त विरोधिनोपि

यात्यिष्वभिः प्रतिपदं सुमनोनुकूलै

र्गौः कामधुक्कमिव नापहरत्यनर्थम्।।

(तरंग ७ । ७८६)

इसके बाद उत्कर्ष ने दूत शूर के हाथ लोहर सैनिकों को अपने आदेश के रूप में अँगूठी भेजी, वह उस समय इतने विभ्रम में था कि कुछ ठीक-ठीक कार्य नहीं कर पा रहा था, उसने बध की ॲगूठी की जगह मुक्ति-आदेश की अँगूठी भेज दी। हर्ष कारागार से मुक्त हो गया।

हर्षदेव को सिंहासन प्राप्ति

कारागार से मुक्त होने के बाद कृतज्ञता अर्पित करने के लिए वह घोड़े पर सवार होकर युद्धभूमि में उत्कर्ष के पास पहुँचा, उस समय वह विजयमल्ल के सैनिकों का प्रतिरोध कर रहा था। उत्कर्ष ने हर्ष का अभिनन्दन किया और कहा कि आप पहले विजयमल्ल को युद्ध ने विरत कर के आइए, फिर हम दोनो समयोचित कार्य करेंगे। हर्ष विजयमल्ल के पास पहुँचा, विजयमल्ल हर्ष को देखकर प्रसन्नता में विभोर हो गया। उसने हर्ष के चरणों में प्रणाम किया। दोनों भाई मिलकर बात करने लगे।

कश्मीर राज्य षड़यन्त्रकारियों का अड्डा था, जब विजयमल्ल और हर्ष दोनों भाई प्रेम से बात

कर रहे थे, तब विजयमल्ल का विश्वसनीय कोई विशिष्ट व्यक्ति उसके कान में कहता है कि यह अच्छा अवसर है कि आप अभी हर्ष का वध कर दो, फिर उत्कर्ष को भी मार कर कश्मीर के निष्कंटक राजा बन जाओ। संकेत की भाषा समझने वाले हर्ष ने इस रहस्य की बात को समझ लिया। परन्तु विजयमल्ल ने उस विशिष्ट पुरुष की सलाह को कोई आदर नहीं दिया। [87] युद्ध बन्द हो गया, इसके बाद हर्ष भाई उत्कर्ष से मिलने के लिए राजभवन पहुँचा।

जब वह राजभवन के भीतर प्रवेश करने लगा तब वहाँ उपस्थित विजयसिंह ने उससे कहा - 'अरे बुद्धिहीन! अभी मृत्यु के मुख से निकले हो, फिर मरने के लिए भीतर क्यों जा रहे हो। सारे सन्देह त्याग कर राजसिंहासन पर बैठो।' इसके बाद विजयसिंह के सेवकों ने कोशागार से राजसिंहासन लाकर रख दिया, हर्षदेव बिना अभिषेक कार्य के ही सिंहासन पर बैठ गया, उस समय वह वही वस्त्र पहने था, जो वस्त्र उसने कारागार में धारण कर रखे थे। उसके सिंहासन पर बैठने का समाचार चारों ओर फैल गया। विजयसिंह ने धूर्ततापूर्वक उत्कर्ष से इस वृत्तान्त को बढ़ा चढ़ाकर वताया तथा उसको रक्षा के लिए प्रयत्नशील करते हुए दूसरे भवन में पहुँचा दिया और बाहर से उसमें रक्षकों की नियुक्ति कर दी। भीतर जाकर उत्कर्ष ने पत्नी से हटकर परदं की ओट में कैंची से रक्तवाहिनी नस काट कर अपनी आत्महत्या कर ली, उसको अपने मारे जाने का भय हो गया था। उत्कर्ष केवल २२ दिन ही कश्मीर का राजा रहा। विजयमल्ल ने हर्ष को राजसिंहासन प्राप्त करने पर प्रसन्नता प्रकट की, आकर मिला हर्ष ने भी उसको अपने पास बुलाकर उसको आदर किया तथा कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा कि आपने ही मेरे प्राणों

की रक्षा भी की और यह राज्य भी दिलवाया, हर्ष ने दोनों हाथ जोड़ लिए। [88]

इस प्रकार कितने ही विघ्नों को पार कर, मृत्यु के मुख से निकलकर हर्ष को अकस्मात राजसिंहासन प्राप्त हुआ, जैसा कि इतिहास में बहुत कम हुआ होगा, उसने राजसिंहासन पर बैठते हुए राजोपयुक्त वस्त्र भी नहीं धारण किये थे। हर्षदेव का यह राज्यारोहण लौकिक संवत् ४१६५, पौष बदी १३ (इस्वी सन् १०८६) में हुआ और उसने लौकिक संवत् ४१७७ भाद्रपद शुक्ल पंचमी (इस्वी सन् ११०१) तक ११ वर्ष ८ मास ११ दिन तक राज्य किया। मृत्यु के समय उसकी अवस्था ४२ वर्ष ८ मास थी। उसका जन्म लौकिक संवत् ४१३४ (इस्वी सन् १०५८) में हुआ था। यह सातवाहन कुल के प्रथम लोहर वंश का अन्तिम राजा था। यह लोहर वंश उदयराज के कुल में था, इसके बाद यह राज्यलक्ष्मी द्वितीय लोहर वंश के कान्तिराज के कुल में चली गयी।

हर्षदेव के राजसिंहासन पर बैठते ही मन्त्रियों, सलाहकारों तथा अन्य अधिकारियों की मनोवृत्तियाँ तत्काल बदल गयीं। कल्हण लिखता है कि जैसे बादल के गरजने पर चातक इकट्ठा हो जाते हैं बैसे ही मंत्रियों की भीड़ हर्षदेव की ओर उन्मुख हो गयी। [89] कल्हण राज्य-दरबारियों और राजकुल की संस्कृति को चित्रित करने में अति व्युत्पन्न कवि है। मन्त्री लोग राजा की कृपा के भूखे होते हैं बिना उनकी खुशामद किये न तो उनको जीवन का सुख मिल सकता है, न उनके हृदय को तृप्ति होती है। चातक बादल की गर्जना से जैसे आकृष्ट होते हैं, वैसे ही मन्त्री लोग राजसिंहासनारूढ़ राजा की ओर आकृष्ट होते हैं। यह उपमा कल्हण ने बहुत सटीक दी है। यद्यपि

साहित्यचर्चा में निष्णात सहृदय लोगों को इस पर आपत्ति हो सकती है, क्योंकि चातक के मेघ-जल-प्रेम को तुलसीदास आदि सन्तों ने राम के प्रति प्रेम की चरम कसौटी माना है। [90]

एक जो बड़ी बात हुई वह यह है कि हर्ष के राजा बनते ही उसकी प्रिया (प्रेयसी) सुगला ने अवसरवादिता का आचरण किया, जब हर्ष को कारागार में डाल दिया गया था, तब वह हर्ष के पिता कलश की रखेल बन गयी थी, यहाँ तक की उसने हर्ष को भोजन में विष देने का भी प्रयत्न किया। उसमें कुछ भी नैतिकता नहीं आयी, पर अब हर्ष के सिंहासन पर बैठने का समाचार मिलते ही उसने धृष्टता के साथ अपने प्रतिकूल आचरणों को छिपाया और महादेवी पद प्राप्त करने के लिए हर्ष के पास आकर बैठ गयी। [91]

राजा हर्षदेव का व्यक्तित्व आकर्षक था, कल्हण ने अपने पिता चण्पक से उसके व्यक्तित्व और गुण आदि की बातें सुनी होंगी, उसने तदनुसार ही वर्णन किया है। वह कवि भी था, गीतों की रचना करता था, संगीतज्ञ भी था। पर वह अच्छा योद्धा नहीं था। उसका वर्णन यद्यपि कल्हँण ने अति विस्तार से किया है, पर इस विस्तार में अनेक मामूली घटनाओं तथा उनसे सम्बन्धित व्यक्तियों का उल्लेख है, इनमें से सभी बर्णनीय नहीं थे। हर्ष ने, राजसभा को विलास-युक्त, संगीत-नृत्य युक्त बनाकर बड़ा आकर्षण पैदा किया पर उसने प्रजा के हित के लिए कोई काम नहीं किया। ११०० ई० में कश्मीर में भयंकर अकाल पड़ा, यह भी उसके पतन का कारण था। हर्ष जैसा कि पहले कहा गया है कश्मीरी राजाओं के विलासी, लोभी तथा परनेय बुद्धि चरित का सच्चा प्रतिनिधि है। उसके चरित का आकलन करने के लिए इन चार शीर्षकों में विचार

साहित्यचर्चा में निष्णात सहृदय लोगों को इस पर आपत्ति हो सकती है, क्योंकि चातक के मेघ-जल-प्रेम को तुलसीदास आदि सन्तों ने राम के प्रति प्रेम की चरम कसौटी माना है। [90]

एक जो बड़ी बात हुई वह यह है कि हर्ष के राजा बनते ही उसकी प्रिया (प्रेयसी) सुगला ने अवसरवादिता का आचरण किया, जब हर्ष को कारागार में डाल दिया गया था, तव वह हर्ष के पिता कलश की रखेल बन गयी थी, यहाँ तक की उसने हर्ष को भोजन में विष देने का भी प्रयत्न किया। उसमें कुछ भी नैतिकता नहीं आयी, पर अब हर्ष के सिंहासन पर बैठने का समाचार मिलते ही उसने धृष्टता के साथ अपने प्रतिकूल आचरणों को छिपाया और महादेवी पद प्राप्त करने के लिए हर्ष के पास आकर बैठ गयी। [91]

राजा हर्षदेव का व्यक्तित्व आकर्षक था, कल्हण ने अपने पिता चण्पक से उसके व्यक्तित्व और गुण आदि की बातें सुनी होंगी, उसने तदनुसार ही वर्णन किया है। वह कवि भी था, गीतों की रचना करता था, संगीतज्ञ भी था। पर वह अच्छा योद्धा नहीं था। उसका वर्णन यद्यपि कल्हँण ने अति विस्तार से किया है, पर इस विस्तार में अनेक मामूली घटनाओं तथा उनसे सम्बन्धित व्यक्थियों का उल्लेख है, इनमें से सभी बर्णनीय नहीं थे। हर्ष ने, राजसभा को विलास-युक्त, संगीत-नृत्य युक्त बनाकर बड़ा आकर्षण पैदा किया पर उसने प्रजा के हित के लिए कोई काम नहीं किया। १ १०० ई० में कश्मीर में भयंकर अकाल पड़ा, यह भी उसके पतन का कारण था। हर्ष जैसा कि पहले कहा गया है कश्मीरी राजाओं के विलासी, लोभी तथा परनेय बुद्धि चरित का सच्चा प्रतिनिधि है। उसके चरित का आकलन करने के लिए इन चार शीर्षकों में विचार

किया जाता है -

क. हर्ष का व्यक्तित्व, धीरता आदि गुण

ख. विलासी जीवन, परनेय बुद्धि

ग. राज्य में अकाल

घ. उच्चल तथा सुस्सल का विद्रोह तथा हर्ष का मारा जाना

हर्षदेव का व्यक्तित्व, धीरता आदि गुण

कल्हण ने प्रायः कई कश्मीरी राजाओं को शक्रोपम वैभव कहा है, पर हर्षदेव को उसने विशेष रूप से मनुष्यों, देवों और दानव - इन्द्रों में न पाये जाने वाले विशिष्ट गुणों से युक्त राजा बताया है। उसका कहना है कि जैसा व्यक्तित्व राजा हर्षदेव का था, वैसे अनुपम व्यक्तित्व से युक्त मनुष्यों और देवों में कोई कहीं नहीं दिखायी देता था, लेकिन विद्वान् लोग यदि उत्प्रेक्षा देना ही चाहते हों तो कदाचित् दानवेन्द्रों में ही कोई हर्षदेव के समान मिल सकता है। हर्ष के शरीर का रंग श्यामल तथा लाल वर्ण से मिश्रित था, उसकी ऑखे सिंह की आँखों के समान प्रसन्न (निर्भीक) लगती थीं। दाढ़ी तथा मूछ के बाल नीचे की ओर फैले हुए उसके मुख की शोभा बढ़ा रहे थे। दोनों कन्धे बैल के समान पुष्ट थे, भुजाएं लम्बी थीं। छाती चौड़ी थी। कटिभाग सिंह के समान पतला था। बादल की गर्जना के समान उसकी गम्भीर वाणी थी। वह अतिमानव के तेज को भी अतिक्रान्त करता था। वह जब राजसिंहासन पर बैछा तब उसने राजभवन के सिंह-

द्वारों पर चार बड़े-बड़े धण्टे टंगवा दिए थे, जिससे प्रजा का कोई भी जन बेरोकटोक अपनी
राजा से कह सके। वह बिना किसी से पूछे अपनी प्रार्थना
प्रार्थना के लिए घण्टा बजा तक सकता था, राजा को तत्काल इसकी सूचना हो जाती थी और वह प्रार्थी के निवेदन को सुनकर उचित कारवाई करता। हर्ष प्रार्थियों की आर्तवाणी (पीड़ा) सुनकर शीघ्र उसका निवारण करता था। वह पीड़ित प्रजा का वैसे ही प्रिय हो रहा था जैसे वर्षाकाल में बादल चातकों की पिपासा शान्त कर उनके प्रिय हो जाते हैं।[92]

हर्षदेव के गुणों और व्यक्तित्व के प्रति प्रजा का आकर्षण उस समय ही सीमातीत हो चुका था जब इसके पिता कलश राज्य कर रहे थे, जिससे कलश को असमय में ही अपना राज्य छिन जाने की आशंका होने लगी थी। कल्हण लिखता है कि -

अत्रान्तरे राजसूनुर्हर्षः सोत्कर्षपौरुषः ।

गुणैर्लेभे प्रकाशत्वमन्यभूपालदुर्लभैः ।।

(तरंग ७ । ६०६)

हर्षदेव के गुण और उसका व्यक्तित्व किसी दूसरे राजा के लिए दुर्लभ थे। पिशुन मंत्रियों ने इधर - उधर की बातें कह कर पिता-पुत्र में इतना विरोध बढ़ा दिया था कि अन्त में कलश ने अपने ऐसे प्रतिभाशाली पुत्र को कारागार में डाल ही दिया तथा मृत्यु के समय बह हर्ष के दर्शन के लिए तरसता रह गया, पर बार-बार कहने पर भी मन्त्रियों ने उसकी भेंट हर्ष से नहीं होने दी।

हर्षदेव ने अपनी राजसभा को बाहरी और आन्तरिक दोनो सजावटों से युक्त किया, राज्य प्राप्त करते ही उसने कुछ को कारागार से मुक्त किया, कुछ दो एक को शूली पर भी चढ़वा दिया। पिता के नौनक मंत्री को, जो गुणी तो बहुत था पर उतना ही पिशुन था, उसने मृत्यु दण्ड दे दिया था, हर्ष को अपने इस आदेश के लिए सदा ही पछतावा होता रहा। [93]

हर्षदेव के राजा होने पर अनेक सामन्त तरह तरह के उपायन लेकर सदा सिंहद्वार पर पहुँचते रहते थे। इन सम्पत्तियों को देखकर उसके वैभव का पता चलता था। राजभवन के सभी लोग चित्र-विचित्र वस्त्र पहनते थे और सोने के आभूषण धारण करते थे। उसके राजभवन के मंत्री, प्रतिहार आदि असंख्य लोग गले में सोने की जंजीर और हाथ में सोने का कड़ा पहन कर विचरते रहते थे। (तरंग ७ । ८८३) उसके मंत्री आदि भी ऐसे वैभव के साथ चलते थे कि उनको देखकर उनके ही राजा होने का भ्रम उत्पन्न होता था।

विलासी जीवन, परनेय बुद्धि

हर्षदेव का व्यक्तित्व तो बहुत आकर्षक था, उसकी प्रतिभा भी बहुत व्युत्पन्न थी, अनेक विशिष्ट गुण भी उसमें थे, वह शकुनशास्त्र का बड़ा पंडित था, उसमें अपार धैर्य था, पिता द्वारा कारागार में बन्द होने पर भी उसमें कभी कातरता नहीं आयी। वह कवि और गीतकार भी था। उसके बनाए गीत सामान्य जन भी गाते थे, उसने अपने बनाए गीतों को पिता के सामने राजसभा में भी सुनाए थे। पिता कलश को पुत्र की ऐसी अनोखी प्रतिभी से ईर्ष्या तो अवश्य थी, पर

उसे भीतर के किसी कोने से लगाव भी बहुत था। कलश को मृत्यु के पूर्व जब नोनक आदि कुछ मंत्रियों ने एक तरह से नजर कैद कर रखा था, कलश के बहुत कहने पर भी हर्ष को उससे मिलने के लिए नहीं बुलवाया, उस समय कलश को जब यह प्रतीत हुआ कि बाहर कुछ दूर गायक हर्ष के रचित गीत गा रहे हैं तो खुली खिड़की के छिद्र से उसने उन गीतों को सुना, पर किसी को न देखकर दुःख के निःश्वास लेता रहा। [94] उसकी बड़ी इच्छा थी कि भले ही उत्कर्ष राज्य का उत्तराधिकारी बन जाए पर हर्ष को राज्य से धन का एक बड़ा भाग दे दिया जाय। पर उसके विश्वस्त मंत्री जो उत्कर्ष के पक्षधर थे राजा की इस इच्छा को पूरी नहीं होने देना चाहते थे। कुमंत्रणा करने वाले तथा अत्यन्त ही पिशुन मंत्रियों से कश्मीर राज्य और राजा बुरी तरह से त्रस्त थे, इसका यह एक जीता जागता उदाहरण है, संभवतः मृत्यु से पूर्व कलश पर लकवा का आक्रमण हो गया था, उसकी वाणी अस्पष्ट हो गयी थी, उसने हर्ष को बुलाने के लिए बार-बार हर्ष का नाम लिया, तब मंत्री नोनक ने यह सोचकर कि हर्ष को बुलाने की बात दूसरे लोग न जान जाएं, तत्काल राजा के सामने 'आदर्श' (दर्पण) रख दिया, जिसका भाव यह था कि राजा आदर्श मांग रहे हैं, वह मैं दे रहा हूँ, हर्ष को बुलाने की बात को उसने छिपा दिया। हर्ष और आदर्श नें बहुत कुछ उच्चारण साम्य हो जाता है। [95] जो भी हो, हर्ष के भाग्य ने साथ दिया, वह राजा बना, पिता की इच्छा भी पूरी हुई, किन्तु बाद में हर्ष राज्य पाकर अत्यन्त विलासी बन गया, और वह भीपरनेय बुद्धिहोकर रह गया, पिशुन मन्त्री जैसा कहते थे, वही वह करता था। वह भी पिता के समान दुष्ट मंत्रियों से घिर गया।

हर्ष के जीवन में परनेय बुद्धि होने का यह मोड़ उसकी विलासिता के कारण आया। जैसा कि पहले कहा गया है, वह राजसभा में संगीत, नृत्त और काव्यगोष्ठी आदि के आयोजन के प्रति बहुत अधिक अभिनिविष्ट हुआ। शोभा और श्रृंगार के प्रति उसकी अभिरुचि का यह हाल था कि कुछ आमात्य, जो बहुत सज धज कर राजसभा में आते थे, राजा हर्ष दासियों द्वारा उसकी आरती उतरवाया करता था। [96]

उसको दाक्षिणात्य-कर्णाटक देश की भावभंगी और साज-सज्जा बहुत पसन्द थी, उसने कर्णाटति देश जैसी ही अपनी गोली मुद्रा (टंक) ढलवायी थी। राजसभा में बैठने वाले सभी लोग चन्दन का मोटा लेप मस्तक पर किए रहते थे और उनकी कमर में चमकती हुइ कटार होती थी। राजसभा में ताड़ के पंखे डुलाये जाते थे। [97]

राजा की सेवा में (चामर डुलाने, ताम्बूल आदि देने के लिए) अनुपम सुन्दरी युवतियाँ सदा लगी रहती थीं। उनके केश की लटें स्वर्ण, केतकी पत्रों से गुँथी होती थी, जिनमें फूल की मालाएँ लटकती रहती थीं, वे ललाट पर लटकाने वाला चंचल तिलक आभूषण धारण करती थीं, अपॉग भाग कज्जल रेखा से कान तक मिला लगता था, उनके मुख बिना घूँघट के तथा केश कलाप सोने की जंजीर के गुच्छों से सँवारे थे । लहँगा का छोर जमीन को छूता चलता था। आधी बाँह के कञ्चुक से उनके स्तन कसे रहते थे। मुख पर कर्पूर की धूल पोते हुए वे मुस्कुराती सी लगती थीं और अपनी चंचल चितवन बिखेरती रहती थीं। यदि वे पुरुष वेष में होतीं तो उनको देखकर कामदेव का ही भ्रम होता। [98]

हर्षदेव ने अपने दान और सम्मान से पण्डितों को प्रसन्न कर दिया, उनको अच्छे घोड़ों के रथ और छत्र दिए, क्योंकि वह स्वयं (कल्हण के शब्दों में) विद्वच्चूडामणि था। गायक तथा दूसरे कथावाचक एवं अन्य भिक्षुकगण राजा हर्ष का दान पाकर बहुत ही समृद्ध हो गये। जिस समय हर्ष कश्मीर का राजा था, उस समय कश्मीर से बाहर गये महाकवि बिल्हण कल्याणपुर के चालुक्य नरेश विक्रमांकदेव की राजसभा में सम्मान पा रहे थे, चालुक्यनरेश ने उनको विद्यापति की उपाधि दी थी तथा यात्रा के लिए हाथी और छत्र प्रदान किया था। विल्हण को जब हर्षदेव के पाण्डित्य-प्रेम का पता चला और कवियों के बन्धु हर्षदेव की कीर्तिगाथा सुनी तब उसने चालुक्य-नरेश के दिए हुए उस महान वैभव को भी वञ्चना-मात्र ही माना और पश्चाताप किया कि इस समय में कश्मीर में क्यों नहीं रहा।[99]

हर्ष की राज-सभा

कल्हण ने हर्ष की सभा का बड़ा ऊँचा वर्णन किया है, उसका कहना है कि देवराज इन्द्र की सभा से अधिक ऐश्वर्यवती हर्ष की राज सभा थी।[100] सभा वितानों से ऐसी शोभित हो रही थी, मानों उपर बादल घिरे हों। राजा हर्ष दिन में दोपहर सोता था तथा सभामंडप में बैठकर रात्रि भर जागरण करता था। रात्रि में वह सभामण्डप हजारों दीपों से प्रकाशमान होता था। और इसमें बैठकर राजा हर्ष विद्वानों की गोष्ठी, गीत तथा नर्तकियों के नृत्त के विविध आयोजनों में रात्रि व्यतीत कर देखा था। राजसभा में शान्ति तथा निस्तब्धता छायी रहती थी, कथा और संभाषण की बातें ही सुनायी पड़ती थीं और संभाषण के अन्त में जब एक दम स्तब्धता छा जाती

थी तब पान चबाने तथा नर्तकियों के जूड़ों से टूट कर गिरे हुए शेफालिका के फूलों की मर्मर ध्वनि केवल सुनायी पड़ती थी। दीपकों का प्रकाश इतना होता था कि सभामंडप आग की दीवार से घिरा सा लगता था। द्वारपाल सुवर्ण के दण्ड तथा रक्षक तलवार लिये खड़े होते थे, उससे लगता था कि बादलों के बीच बिजली और धूमकेतु उदय हो रहे हैं। सुन्दरी ललनाएं इन्द्र की अप्सराओं केसौन्दर्य को लज्जित करने वाली थीं। मन्त्रियों द्वारा सभा नक्षत्रों से युक्त लगती थी, विद्वानों और ऋषियों की उपस्थिति मालूम पड़ती थी और गायक उसे गन्धर्व नगरी बनाये हुए थे। कुबेर और यम दोनो की परम सत्ता वहाँ थी, जैसे वह सभा दान और भय की वितरण स्थली थी। अर्थात् वहॉ ऐश्वर्य की कोई कमी नहीं थी, तथा अन्याय करने पर राजदण्ड का भय सभी को था। [101]

विभव की पराकाष्ठा यह थी कि सोने और चॉदी के दीनारों की ही प्रचलन था, तांवे के सिक्के नहीं चलते थे। भूखे, रोगी, अनाथ-दीनों की सहायता राजकोष से हुई। राजा हर्ष के आमात्य चण्पक (कल्हण के पिता) प्रतिवर्ष सात दिन मन्दिर क्षेत्र में निवास कर अपनी लक्ष्मी का उपयोग धर्म तथा दान के लिए करते थे। राजा हर्ष ने ब्राह्मणों को काले मृग चर्म और व्याई हुई गायों का दान किया। (तरंग ७ । ६५० - ६५५)

कल्हण ने यहॉ ब्याई हुई या ब्याती हुई गायों को 'उभयमुखी' संज्ञा से अभिहित किया है-

कृष्णजिनोभयमुख्यैर्दानैः क्षमाभुजा ।

अदरिद्रीकृता विप्रा निःशेषार्तिच्छिदार्थिनाम् ।।

लेकिन राजशास्त्र की दृष्टि से विलास पूर्ण राजसभा तथा ब्राह्मणों को विविध दान देकर पुण्य का संचय राजा का यह नीति विहीन एकांगी चरित है। राजा को चहिए कि राज्य की रक्षा नीतिपूर्वक करे, उपयुक्त सैन्य संगठन रखे तथा प्रजा के सुख, कृषि और विविध उद्योग व्यापार को प्रोत्साहन एवं पूर्ण सुरक्षा प्रदान करे, अन्यायियों को दण्डित करे तभी राज्य में शान्ति होती है और वह स्थिर होता है। [102] राजा हर्ष में इन राजोचित गुणों का सर्वथा अभाव था। अन्याय परायण धूर्त लोग ही उसके सलाहकार थे। मूलरूप में बह कवि था, श्रृंगारभाव के अच्छे गीतें की रचना उसने की थी, जो लोक में बहुत प्रिय थे, तथा उसके मरने के बाद भी गाए जाते थे। कवि कल्हण ने भी हर्ष के रचित गीतों को लोगों द्वारा गाए जाते सुना था। [103] हर्ष को अन्य कई विद्याओं और कलाओं का भी अच्छा ज्ञान था।

ऐसा लगता है कि दिन रात मनमानी विलास का खर्च और सीमातीत दान से राजकोष खाली होने लगा तथा राजा हर्ष को अधिक से अधिक धन की प्राप्ति के लिए अनर्गल उपायों की चिन्ता होने लगी। यह एक विचित्र बात थी कि राजा प्रजा के सुख और सुशासन के लिए बिल्कुल चिन्तित नहीं था जैसे वह अपने आप होता रहता है, उसे केवल प्रभूत लक्ष्मी और विलास की चिन्ता थी । ऐसे मे चापलूस दरबारियों किटों भाड़ों ने अपनी खुशामदभरी बातों से राजा को वश में कर लिया था। इस परिस्थिति का वर्णन कल्हण अत्यन्त विस्तार से करता है उस वर्णन

से मध्यकालीन राजाओं के भयंकर पतन का एक यथार्थ चित्र सामने आता है । लगता है कि केवल कश्मीर में ही नहीं अन्य मंडलों के राजाओं में भी उस काल में राजाओं का चरित्र कुछ ऐसे ही था ।

हर्ष दुरभिमान से भर गया था । तथा अपने को दूसरा इन्द्र ही समझता था । तथा उसने पिता को भी अत्यन्त हेय समझा । अपने पिता के संचित धन को व्यर्थ के मदों मे खर्च डाला तथा पिता कलश को लोभी करार कर उनका नाम पापसेन रख दिया, । राज्य से उनके नाम का चिन्ह मिटवा दिया । उनके बनाये मठ आदि ध्वस्त कर दिये मूढ़ चित्त उस राजा हर्ष ने अपने अन्तः पुर में तीन सौ साठ रानियों को ले आकर रखा था--

विपन्नस्य पितुर्वेर---प्रतिकार विधित्सया ।

स राजधानी नामाङ्क मठादि निरलोठयत् ।।

त्यागी तत्कोशसम्भारं व्ययीकुर्वन्नितस्ततः ।

लुब्धस्य चाभिधां तस्य पापसेन इति व्यधात् ।।

शुद्धान्ते शुद्दशीलानां ढौकितं मूढचेतसा ।

स्पष्टं षष्टचधिकं राज्ञा स्त्रीणां तेन शतत्रयम् ।।

(राज०७।६६१--६३)

दूसरी ओर राज्य की कामना रखने वालों ने राजद्रोह भी आरम्भ कर दिया । यह राजद्रोह

गजपुरी, लोहर और परिहास पुर में हुआ । राजा का विवेक नष्ट हो गया था । ऐसे समय में उसने अपने विश्वस्त सेनापति कन्दर्प को धूर्तों की शिकायतों से पद से हटा दिया । वह वीर और राजा का भक्त था । उसने कश्मीर छोड़ दिया । कल्हण के वर्णन के अनुसार कन्दर्प अपने कुछ सैनिकों के साथ वाराणसी चला आया तथा अपनी वीरता से जनता के हितैषी कुछ कार्य किये[१०४]।

कन्दर्प के चले जाने से दुष्टमंत्री और विट प्रसन्न हो गये उनका लक्ष्य सिद्ध हो गया । वे परस्पर ईर्ष्या से राजा के कार्यों को नष्ट करने लगे । तथा राजा के विद्रोही सशक्त होने लगे--

ते तन्निर्वसनादेव लब्धलक्षाः कुमन्त्रिणः ।

अन्योन्या सूचया जघ्नुरथ कार्याणि भूभुजः ।।

(तरंग ७।१०११)

इसके बाद राजा हर्ष द्वारा मंन्दिरों से सोने चाँदी ताँबे आदि धातुओं की बनी मूर्तियों को जबर्दस्ती तोड़ कर मंदिरों को जबर्दस्ती तोड़कर मंत्रियों के अग्रहार आदि सर्वस्व छीनकर धन इकट्ठा करने का अध्याय शुरू होता है। इस कार्य में राजा को उत्साहित करने वाला लोष्टधर नाम का धूर्त मन्त्री था । जो तरह तरह की धूर्तताभरी बातों से राजा को इस कार्य के लिए उत्साहित कर रहा था । कहता था कि मन्दिर में लगे अग्रहार ग्राम और सुवर्ण का आप अपहरण कर लें । तथा मन्दिर को तोड़ कर उसके पत्थरों से आपके लिए वितस्ता नदी पर पुल का निर्णाण कराऊंगा । (७।१०७७) कभी कहता था कि राजन् बंधे हुए देवताओं को वन्धन मुक्त कीजिए

(७।१०८०) । राजा हर्ष ने इसके अनन्तर पूर्व के राजाओं द्वारा देव मन्दिरों के लिए अर्पित किये गये समस्त कोश और धन का अपहरण कर लिया । मन्दिरों की मूर्तियों को तोड़ने वाला एक अधिकारी ही नियुक्त कर दिया गया, जिसे देवो त्पाटन कहा गया । (७।१०९१) सोने चांदी अदि की मूर्तियों तोड़कर रस्सी में बांधकर कूड़े करकट से भरे मार्ग से घसीट कर लायी गयी । गाँव नगर या पुर में ऐसा कोई प्रासाद नहीं था, जिनमे स्थापित मूर्तियों को तोड़कर राजा हर्ष रूपी तुर्क (तुरुष्क) ने उन उन मन्दिरों को प्रतिमा-विहीन नहीं कर दिया । तथा वह सारा धन राजकोष में रख लिया । [१०५]

राजा चारों ओर से निन्दा का पात्र बन गया तथा पतन की ओर पूर्ण रूप से उन्मुख हो गया ।

इस बीच उसके विश्वस्त सैनिकों को निकाल देने अथवा जान मे मारने की सलाह राजा धूतर्के मंत्रियों ने दी राजा ने ऐसा ही किया। इसी क्रम में सन् १०९९--११०० ईस्वी लौकिक वर्ष ४१७५ में कश्मीर राज्य के सारे ग्राम पानी की भीषण बाढ में डूब गये । लोग बिना खाये मरने लगे । पांच सौ दीनार खर्च करने पर एक खारी (लगभग वर्तमान एक किवंटल) अन्न मिलता था । नमक काली मिर्च और हींग का तो कहीं नाम भी नहीं था । (तरंग ७।१२१९-२९) इस पर प्रजा के साथ सहाँनुभूति की बात दूर रही, राजा ने भयंकर रूप से कर और राजदंड वसूल करना शुरू कर दिया । मडव जनपद पर के डामरों (लवन्यवासियों) का तो खुले आम वध किया जाने लगा । और उनके मुण्डो की माला बनाकर राजा हर्ष को भेंट की जाती थी ।

राजा जहाँ जाता था धूर्त मंत्री इन मुण्डो का ही तोरण द्वार सजाते थे । इस वध में राजाज्ञा का विरोध करने वाले सौम्य ब्राह्मणों को भी नहीं छोड़ा गया । कल्हण लिखता है कि राजद्वार पर सब ओर छोटे घड़ो की-सी डामरों की सी खोपड़ियों की बन्दनवारें सजायी गयी थीं ।

तोरणावलंयो राजद्वारोऽदृश्यन्त सर्वतः ।

डामराणां करोटीमिर्घटी रिव निर्माराः ।।

(तरंग ७।१२३४)

लवन्य की प्रजा इस अत्याचार से पीडित हो कर पश्चिमी म्लेच्छ देशों की ओर भाग गयी। वहां मजदूरी करके जीविका बसर करने लगी। प्रजा के विवेकी पुरुषें ने मनमें यह धारणा निश्चय कर ली कि राजा हर्ष के रूप में कोई राक्षस ही देवों, तीर्थों तथा ऋषियों से पूजित इस मण्डल का नाश करने के लिए पृथिवी पर उतर आया है-

किमन्यद्राक्षसः काश्चित् सुरतीर्थर्षि पूजितम् ।

निहञ्तुं मण्डलामिदं हर्षब्याजादवातरत् ।।

(तरंग ७।१२४३)

सुस्सल तथा उच्चल का उदय

इसी समय दूसरी घटना घटी। लक्ष्मीधर राजा का मंत्री था। उसकी पत्नी सुन्दर थी। पर वह वानरमुखी कुरूप था। राजकुल के मल्लराज के पुत्र सुस्सल पर वह आसक्त हो गई। लक्ष्मीधर को यह अच्छा नहीं लगा। उसने राजा को सलाह दी कि अपने अगणित कुटुम्बी जनों का वध कर अपने को निष्कंटक बनाया, पर अब तक सुस्सल और उच्चल का वध नहीं कराया, यह आपके लिए बहुत बुरा है, क्योकि ये दोनो राजकुमार राज्योचित लक्षणों से युक्त हैं और कभी भी आपका राज्य छीन सकते हैं। (तरंग ७।१२४८-४६) राजा ने पहले तो इस बात पर ध्यान नहीं दिया। उसको उनका वध करने से भय लग रहा था, पर अन्त में उसने उनका वध करने का निश्चय किया। इस बात का पता उन दोनों भाइयों को लग गया। उन्होंने लौकिक वर्ष ४१७६ (११०० ई०) के अगहन महीने में उत्रास निवासी डामर के घर में जाकर शरण ले ली।

इसके अनन्तर तो सुस्सल और उच्चल का विरोध राजा हर्ष से बिल्कुल प्रकट और आमने-सामने हो गया। गृह में युद्ध की सी स्थिती हो गई। राजा ने धूर्त मंत्रियों के कहने से अपने विश्वासपात्र जनों को राज्य से निकाल दिया। सच बात यह थी की न तो राजा की कोई नीति थी, न नीति से युक्त सैन्य बल था। राज्य की प्रजा सुस्सल और उच्चल का सम्मान और जयकार करने लगी। राजा हर्ष के सेवक उसकी आँखों के सामने ही उच्चल की चर्चा किया करते थे।

अभी भी हर्ष में सुबुद्धि नहीं आयी, वह अपने हितैषियों का ही विनाश करता रहा। उच्चल तथा सुस्सल के पिता मल्लराज ने अपने पुत्रों के बहुत अनुरोध करने पर भी राजा का साथ नहीं छोड़ा। वह राजा का एक निष्ठ अनुचर बना रहा। परन्तु हर्ष ने उसे मार डालने का कुचक्र रचा

और एकाएक उसके ऊपर चढ़ाई कर दी। जब हर्ष के सैनिक उसके ऊपर आक्रमण करने पहुँचे, वह मल्लराज देव-पूजा कर रहा था, उसके उस स्वरूप का वर्णन करते हुए कल्हण लिखता है -

मल्लराज देव पूजा में था, कन्धे पर यज्ञोपवीत, हाथ में रुद्राक्ष की माला, अंगुलियों में कुश की पवित्री और ललाट का मध्य भस्म से चमक रहा था, लगता था यह दूसरा परशुराम है।[१०६]

सैनिकों ने उस पर आक्रमण कर दिया, वह लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुआ। राजा हर्ष ने मल्लराज की मृत्यु के बाद उसकी पीठ पर घोड़े दौड़ाए। उसका मन उस समय इस प्रकार के घृणित विचारों से भर गया था। (तरंग ७।१४८५) इसके बाद उसकी रानियाँ भवन के भीतर ही आग जलाकर सती हो गयीं। वितस्ता नदी के तट पर विशाल भवन में आग धू-धू कर जलने लगी। उच्चल और सुस्सल की माता नन्दा ने आग में सती होने के पूर्व भवन के ऊपरी सौध पर खड़े होकर अपने पुत्रों की सेनाओं को उत्तर तथा दक्षिण दिशा की ओर देखा। और फिर उत्कण्ठा पूर्वक सेनाओं की ओर देखते हुए कहा - 'मेरे पुत्रों ! पिता के घातक इस शत्रु (हर्ष) के कुल का नाश करने के लिए कुछ दिनों में ही तुम दोनों परशुराम के समान संहार-लीला का ताण्डव करना'। इसके अनन्तर वह आग में कूद कर सती हो गई।[१०७]

भाद्रकृष्णपक्ष की नवमी को मल्लराज के दोनों पुत्रों ने अपने पिता के अत्यन्त क्रूरता से मारे जाने का समाचार सुना । (७।१४६७) तब दोनों ने क्रोधाग्नि से जलते हुए राजपक्ष का विनाश करना शुरू कर दिया । जहां राजा के लोगों का निवास था उन गाँवों को जलाना शुरु

कर दिया । विजय करने के लिए राजा के ऊपर धावा बोल दिया । शीघ्र ही सुस्सल ने राजा के विजयेश्वर कोषागार पर अधिकार कर लिया। राजा के चन्द्रराज तथा इन्द्रराज वीरयोद्धा इस संघर्ष में मारे गये । राजा हर्ष की आशाओं पर पानी फिर गया । सुस्सल की विजय का अभियान बढ़ता गया राजा हर्ष पराजित होता गया । अपने विश्वस्त जनों के प्रति विश्वासघात का यही परिणाम होता है । सेनापति और नगराधिकारी नाग ने हर्ष को धोखा दे दिया । कलशपुर की लड़ाई में उच्चल से पराजित होकर हर्ष दुर्ग से निकल कर भागा । उधर उसका पुत्र भोजदेव भी आग में जलते नगर को देखकर पलायन कर गया, वह पाँच-छह घुड़सवारों के साथ लोहर की ओर गया । हर्ष आँखों में आँसू भरकर पुत्र को जाता देखता रहा ।

हर्षदेव की मृत्यु

अब हर्ष को किसी प्रकार अपनी जान बचाने की आ पड़ी । उसने पुत्र के समाचार के लिए मन्त्री चण्यक (चम्पक) को भेजा । मुक्त तथा प्रयाग - दो विश्वस्त जनों के साथ अपनी रक्षा की खोज में चला । भादों का महीना था वर्षाकाल था । राजा अपने दोनों अनुचरों के साथ सोमानन्द नामक एक क्षुद्र तपस्वी की कुटी में आश्रय के लिए पहुँचा । उसके प्रांगण में सोमेश्वर देवी थीं । वह तपस्वी नाम मात्र का था, वस्तुतः वमू स्त्री भिश्चा के साथ कुट्टिनोचित कार्य करता था । (तरंग ७।१६३६-३७) हर्ष के अनुचर सुरक्षा की दृष्टि से वहां गये थे । राजा भींगा हुआ था, भूख से व्याकुल था, किसी प्रकार प्रयाग ने भोजन का प्रबन्ध तो किया, पर दूसरे ही दिन सोमानन्द ने सारा रहस्य जानकर अपने लाभ के लिए शत्रुपक्ष को राजा के अपने यहॉं छिपे रहने की सूचना दे दी। कायर सैनिक उस कुटी पर चढ़ आये । राजा अकेला लड़ता हुआ मारा गया । उसका सिर काट लिया गया । उसका कटा शरीर (शव) अनाथ की

तरह नग्नावस्था में पड़ा रहा, गौरक नामक लकड़हारे ने उसको अग्नि को समर्पित किया ।[१०८]

राजा का अन्त बहुत बुरा हुआ । उसने जीवन में जैसे दुष्कर्म किये थे, उसके अनुसार यह ठीक ही था, तथापि डॉ. रघुनाथ सिंह ने इस पर टिप्पणी की है कि "कल्हण ने हर्ष की बहुमुखी प्रतिभा की प्रशंसा की है । वह विद्वान्, ज्योतिषी, संगीतज्ञ, कवि गायक, नाटककार, सफल अभिनेता तथा शिक्षक था । परन्तु राज्योचित गुण कंटक-शोधन तथा सैन्य शक्ति के प्रति उसने उपेक्षा की थी । सेना तथा सैनिक अभियानों में उसे कभी सफलता नहीं मिली । केवल इसी एक दुर्गुण के कारण उसे कष्ट तथा अतिशोचनीय मृत्यु प्राप्त हुई ।"[१०९]

परन्तु हर्ष में संग्राम की विमुखता ही नहीं, और भी अनेक गुणों का अभाव था, वह बहुत खुशामद पसन्द था, विश्वस्त जनों का अपमान करता, उनको देश निकाल तक दे दिया । विलास की भावना उसमें सीमातीत थी, रात-रात भर नृत्त-गान की गोष्ठियाँ जला करती थीं । वह बड़ों का अपमान करने में नहीं चूकता था । उसने पिता को लोभी कहकर उनका नाम ही पापसेन रख दिया । धन के लोभ में मूर्तियाँ तोड़वा दीं, मूर्तियाँ सड़क पर रस्सी में बॉधकर घसीटी गयीं। मन्दिरों का अग्रहार छीन लिया । वह राजा कम लुटेरा ही अधिक था । प्रजा के ऊपर अकाल के समय में भी न देने योग्य कर तथा दंड लगाये और उसको वसूल भी किया ।

कल्हण मृत्यु के समीप पहुँचे हुए भी हर्ष की कुछ-कुछ प्रशंसा ही करता है । इसका कारण कदाचित् यही रहा कि उसका पिता चम्पक हर्ष का विश्वासपात्र मंत्री था । हर्ष की इस दुर्घट मृत्यु पर कवि कल्हण को बहुत अफसोस है[११०], पर हर्ष के दुष्कृत्यों को वह भूल जाता है, उसने

अपनी बहन को भी बलात्कार में नहीं छोड़ा था ।[111] वह कवि और संगीतज्ञ अवश्य था, पर इसकी तुलना में उसमें दुर्गुण बहुत अधिक थे । कल्हण ने उसकी जन्मपत्री का ब्यौरा भी दिया है,[112] जिसके अनुसार उसकी जन्मपत्री यह है -
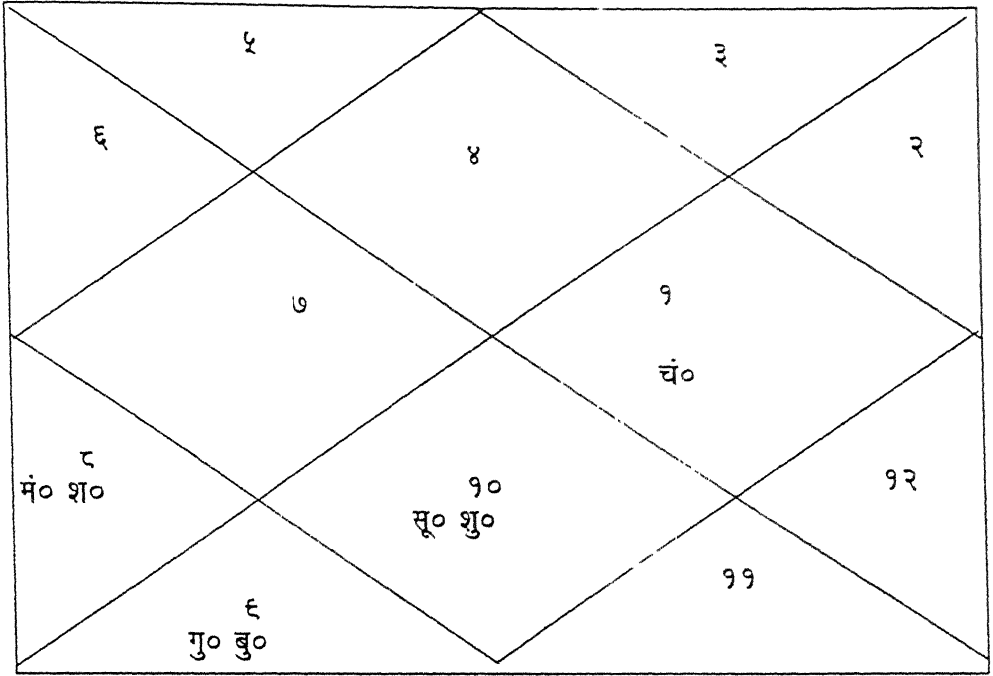
मृत्यु के समय हर्ष की आयु बयालीस वर्ष आठ मास की थी, वह लौकिक वर्ष ४१७७ (सन् ११०१ ई०) में भाद्रपद शुक्ल पंचमी को मारा गया ।

कल्हण ने हर्ष का बड़े विस्तार से वर्णन किया है । सप्तम तरंग के छन्द ८६६ से १७२८ छन्द तक हर्ष की राज्यप्राप्ति और उसके राज्यकाल की घटनाओं का ही वर्णन है । यद्यपि कल्हण को अपने पिता चम्पक से हर्ष के सम्बन्ध में विस्तार से जानकारी प्राप्त हुई थी, और वर्णन करने में उसने उसका उपयोग किया, यह सत्य बात है । परञ्च यह वात भी है कि कल्हण किसी

कारण-वश दुष्ट राजा हर्ष को महान् मानता है और उस महानता से वह अभिभूत है, वर्णन का अन्तिम छन्द इसी बात को प्रकट करता है -

दीर्घो हर्षनृपोदन्तः सोऽयं कोऽप्यद्‌भुतावहः ।

रामायणस्य नियतं प्रकारो भारतस्य वा ।।

(७।१७२८)

अर्थात् हर्ष की यह लम्बी कहानी रामायण और महाभारत के समान ही आश्चर्य से भरी है ।

दिद्दा देवी

दिद्दा रानी का वृतान्त षष्ठ-तरंग में छन्द संख्या १७६ से आरम्भ होता है और समाप्ति तक छन्द ३६८ तक कहा गया है । यह लोहर दुर्हग के शास्ता सिंहराज की पुत्री की और तत्कालीन कश्मीर नरेश क्षेमगुप्त को ब्याही गयी थी । यह विचित्र, दुखी, निष्वनण तथा अत्यन्त कामुक नारी थी । क्षेमगुप्त की मृत्यु के बाद इसने पाँच राजाओं - अभिमन्यु, नन्दिगुप्त, त्रिभुवन तथा भीमगुत को स्वयं ही किसी न किसी प्रकार मरवा डाली और अन्त में स्वयं शासिका बन बैठी । इसका विवाह ६५५ ई. के आसपास हुआ होगा । ६५८ ई. में क्षेमगुप्त की मृत्यु हो गयी । तदनन्तर पांच राजाओं का राज्यकाल ६८० ई. में समाप्त हो जाता है । ६८० ई. में यह स्वयं

शासिका बन बैठी और १००३ ईस्वी तक राज्य किया । इसका पिता लोहर था शासक खश वंश का था ।

दिद्दा लोककर्णी स्वभाव की थी । लोककर्णी का अर्थ है जो सुनी हुई बातों पर ही विश्वास करता हो [११३]। राजा क्षेमगुप्त की मृत्यु के बाद उसने विश्वस्त मंत्री फल्गुण को निष्कासित कर दिया। दयालु अमात्य नरवाहन ने उसे अन्य रानियों के साथ राजा की चिता पर सती होने से रोक दिया था । इसके अनन्तर वह मिथुन रवल के रहने से सारे कार्य करने लगी । (तरंग ६) १६७) बाद में वह कूटनीति विरोधियों को पराभूत करने में सफल हुआ । ऐसा लगता है कि कश्मीर में ब्राह्मणों की पंचायत राज्य शासन में बहुत हस्तक्षेप करती थी, और उनको रुपया देकर पक्ष में कर लिया जाता था, यही दिद्दा ने भी किया, ललितादित्यपुर में ब्राह्मणों को प्रचुर स्वर्ण देकर शीघ्र ही पक्ष में कर लिया । दूसरे विरोधियों को भी अन्य उपायों से निष्क्रिय बना दिया । कल्हण लिखता है कि जिस दिद्दा को लोग जो थद (गाय के खुर का गढ़ा) पार करने में भी समर्थ नहीं समझते थे, उसने राज्य संघ के समुद्र को पार करने में हनुमान् जी का पराक्रम दिखा दिया । स्थिति यह हुई कि उसके 'महिम्रः अभिचार' से पूरे कश्मीर मण्डल में उस रण्डा (दिद्दा) की अखंड आज्ञा विजृम्भित होने लगी । [११४]

राजा जो होता रहा वह नाम मात्र का होता था सारा शासन और आज्ञा दिद्दा रानी के थे। उसने अपने विरोधी एरमन्तक के गले में पत्थर की शिला बाँधकर वितस्ता की धारा मे डुबो दिया । वह रक्क आदि पिशुनों का इतना विश्वास करती थी कि अपने हितैषी नरवाहन से भी उसका विरोध हो गया । लेकिन जब रक्क की

मृत्यु हो गयी तब उसने पुत्र फल्गुण को अपना अमात्य बना लिया । ९७५ ई. में उसने अभिगुप्त को राजा बनाकर सिंहासन पर बैठाया । कवि कल्हण इसका वर्णन करते हुए लिखता है कि उस क्रूर (दिद्दा) ने स्वेच्छा से अन्तिम भीमगुप्त को राज्य नामक मृत्युपथ पर निवेशित किया ।[११५] जिस समय भीमगुप्त को राजा बनाया गया दुर्दैवयोग से मंत्री फल्गुण की मृत्यु हो गयी । फल्गुण की मृत्यु से दिद्दा की क्रूरता और निर्लज्जता और बढ़ गयी । वह बिल्कुल निर्लज्ज होकर मुख से घूँघट हटा कर दुष्ट चेष्टाएँ करने लगी । (तरंग ६/३१५)

क्रूर और निर्लज्ज रानी

इसी समय एक दिन पर्णोत्स के वछिवास ग्राम का तुंग नामक खश युवक लेखहरिल के कार्य से सन्धि-विग्रहित के पास आया । उसको रानी दिद्दा ने देखा तो उसका हृदय उस पर निछावर हो गया । फिर तो रानी ने दूती द्वारा उस युवा तुंग को बुलवाया । और उसे अपना जारपति बना लिया । जब भूप ने विरोध किया तो विष देकर उसकी हत्या करवा दी ।[११६]

गुप्त यातनाओं द्वारा उस रानी दिद्दा ने भीमगुप्त की भी हत्या करा दी और छप्पनवें वर्ष में स्वयं सिंहासनासीन हो गयी । रानी का जारपति बन कर तुंग ने सभी लोगों को नीचे दबा किया और सर्वाधिकारी बन गया । तुंग से प्रताड़ित होने पर पूर्व मन्त्रियों ने दिद्दा के भातृपुत्र विग्रहराज को सिंहासन पर बैठाने का विप्लव प्रारम्भ किया तथा अग्रहारों में विप्रों को पर्यायवोशन के लिए सहमत किया, तथा तुंग की हत्या करने के लिए अवसर देखने लगा । पर यह सब कुछ नहीं हो सका । दिद्दा ने ब्राहम्णों को सुवर्ण प्रदान कर अपने पक्ष में कर लिया, उनका प्रायोपदेश्न समाप्त हो गया । विग्रहराज भी जो विप्लव की तैयारी कर रहा था, भग्नशक्ति होकर चुपचाप

लौट गया । इसके बात तुंग ने विप्लव के षड्यंत्रकारियों की क्रमशः हत्या कर दी अथवा करवा दी । विग्रहराज ने पुनः विप्लव की तैयारी किया, पर तुंग ने सभी को भगा दिया और विप्लव को विफल कर दिया । उसने राजपुरी के राजा वीरपृथ्वीपाल को भी कर देने के लिए विवश किया । बलशाली तुंग ने डायरग्राम समूह का भी संहार कर दिया ।

तुंग के साथ निःशुल्क विलास भोग और शासन करती हुई रानी दिद्दा ने, भविष्य के लिए अपने भाई उदयराज के पौत्र संग्रामराज को युवराज पर पर आसीन किया । यहां कल्हण ने संग्रामराज के बालजीवन की कहानी की है, जिसके कारण दिद्दा ने उसे सिंहासन के योग्य समक्षा । जो कि वर्ष ४०७६ (ईस्वी १००३, विक्रम १०६०) में दिद्दा देवी दिवंगत हुई तब संग्रामराज सिंहासन पर बैठा । संग्रामराज को यह राज्य दिद्दा के कारण ही प्राप्त हुआ । कल्हण ने इस पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि कश्मीर मंडल में स्त्री-सम्बन्ध के कारण राजवंश का यह तीसरा परिवर्तन था ।[११७]

संग्रामराज शूरवीर नहीं था, साहसी भी नहीं था, परन्तु दिद्दा ने अपने नारी स्वभान की भीरूता के कारम उसे युवराज बनाना पसन्द किया था । रानी को उसका गुण पसन्द आया कि वह शूरता (द्वन्द्व) न कर बालपन में फलों के ढेर में से अधिक फल लेने की इच्छा रखकर सावधनी से समय की प्रतीक्षा करता रहा और जब दूसरे भाई लड़ने लगे तब इसने अधिक फल बटोर लिये (तरंग ६।३५६-३६१) । कवि कल्हण ने इस पर टिप्पणी दी है कि भावना का अतिशय प्रावल्य ही कार्य सिद्धि का हेतु बनता है । शूर को शूरता से और भीरू को अपनी भीरुता से

कार्य में सिद्धि दिखायी पड़ती है । [११८] बन्दर लकड़ी के ढेर को बिना आग के ही तापते हुए शीत दूर कर लेते हैं तथा अग्नि शौच मृग के रोएं शुद्ध करने के लिए आग ही पानी का काम करता है । वस्तुतः प्राणियों की भावना ही भावी कार्य-सिद्धि को निष्पन्न करती है, वहाँ पर सहज धर्म ही करता है । यह नहीं दिखायी पड़ता। (तरंग ६।३६४)

दिद्दा देवी का राज्यकाल कश्मीर राज्य संस्कृति का समग्र निदर्शन (उदाहरण) है कि वहाँ का राज्य कैसे चलता था, तथा वहाँ की अमात्य परिषद किस प्रकार मंत्रणा करती थी । प्रायः राजकुल विलास में डूबा रहता था ।

संदर्भ

१. राजतरंगिणी तरंग १।६३

अथ शस्त्रक्षतैरङ्गैरालिङ्ग रणाङ्गने ।

भुवं काश्मीरिको यादवस्तु जयश्रियम् ॥

२. वही, तरंग १।६६

तदाक्रान्तासुहृच्चक्रः स चक्रायुधसंगरे ।

चक्रधाराध्वना धीरश्चक्रवर्ती दिवं ययौ ॥

३. राजतरंगिणी तरंग ४।४०

तस्याभिजनमालिन्यं स्वच्छैरच्छेदि तद्गुणैः ।

शाणश्मकषणैः कार्ष्ण्यमाकरोत्थं मणेरिव ॥

४. वही, तरंग ४।६४

भूयो ब्राह्मण्यावादीत्तं ख्यातः खाखौद विद्यया ।

निस्संभ्रमः स्तम्भयितुं देव दिव्यक्रियामयम् ॥

५. मनुस्मृति अध्याय ८।३८०-३८१

न तु ब्राह्मणं हन्यात् सर्वपापेष्वपि स्थितम् ।

राष्ट्रादेनं बहिः कुर्यात् समग्रधन मक्षतम् ।।

न ब्राह्मणवधाद् भूयानधर्मो विद्यते भुवि ।

तस्मादस्य वधं राज्ञा मनसापि न चिन्तयेत् ।।

कौटलीय अर्थशास्त्र में ब्राह्मण का वध न कर उसे कालकोठरी में बन्द करने का आदेश है— ब्राह्मणं तमः प्रवेशयेत् । कौ० अर्थ० ४।८६।११।४

६. राज० तरंग ४।११६

मुमूर्षुर्यत्त लब्ध्वाऽपि तं कृत्याधायिनं द्विजम् ।

वराकेऽन्यप्रयुक्तेऽस्मिन् को दोष इति नावधीत् ।।

७. कौटलीय अर्थशास्त्र देखिए अधिकरण १४। प्रकरण १७८ । अध्याय ३। सूत्र १-४

८. कौटलीय अर्थशास्त्र अधिकरण १ । प्रकरण ४। अध्याय ८। सूत्र २-३

पु रो हित मु दितो दितकु लशीलं षडङ्गे वे दे दै चाभिविनीतमापदां दैवमानुषीणाम अथर्वभिरुपायैश्च प्रतिकर्तारं कुर्वीत । तमाचार्य शिष्यः पितरं पुत्रो, भृत्यः स्वामिनमिव चानुवर्तेत ।

ब्राह्मणोनैघितं क्षत्रं मन्त्रिमन्त्राभि मन्त्रितम ।

जयत्यजितमत्यन्तं शास्त्रानुगत शास्त्रितम् ।।

९. हर्षचरित, उच्छ्-वास ३

१०. राजतरंगिणी, तरंग ४।१८६

एकांकोटिं गृहीत्वा स दिग्विजयाय विनिर्गतः ।

भूतेशाय ददौ शुध्दचै कोटीरेकादशाऽगतः ।।

११. राजतरंगिणी (संपादक डा० रघुनाथ सिंह) भाग २,पृ० ६६ (टिप्पणी)

१२. राजतरंगिणी तरंग ४।१२६

राजा श्री ललितादित्यः सार्वभौमस्ततोऽभवत् ।

प्रादेशिकेश्वरसष्टु र्विधेर्बुद्धेरगोचरः ।।

१३. वही, तरंग ४। ३६६

सैकादश दिनान् सप्त मासान् षटत्रिंशतं सभाः ।

एवमाक्राय स महीं प्रजाचन्द्रो ऽ स्तमाययौ ।।

१४. वही तरंग ४।३६७-३७०

१५. वही तरंग ४। ३७१

जायन्ते महतामहो निरुपम प्रस्यान हेवाकिनां ।

निस्सामान्य महत्त्वयोग विशुना वार्ता विपत्तावपि ।।

१६. राजतरंगिणी तरंग ४।१६१

चक्रे चक्रधरे तेन वितस्ताम्भः प्रतारणम ।

विनिर्मायारघट्टाली स्तांस्तान ग्रामान प्रयच्छता ।।

१७. राजतरंगिणी तरंग ४। १८५

एकमूर्ध्वं नयद्रत्नमधः कर्षत्तथापरम ।

बद्धवा व्यधान्निरालम्बं स्त्रीराज्ये नृहरिं च सः ।।

१८. राजतरंगिणी तरंग ४।१३४-१३५

यशोवर्माऽद्रि वाहिन्याः क्षणात कुर्वन् विशोषणम् ।

नृपति र्ललितादित्यः प्रतापादित्यतां ययौ ।।

मतिमान् कान्यकुब्जेन्द्रः प्रत्यामातकृत्यवेदिनाम् ।

दीप्तं यत् ललितादित्यं पृष्ठं दत्त्वा न्यषेवत ।।

१९. भारतीय इतिहास का उन्मीलन, (श्री जयचन्द्र विद्यालंकार) पृष्ठ ३०९

२०. राजतरंगिणी तरंग ४। १६७

त्रीन् वारान् समरे जित्वा जितं मेने स मुम्मुनिम् ।

सकृञ्जयमरेवोरा मन्यन्ते हि घुणाक्षरम् ।।

२१. भारतीय इतिहास का उन्मीलन, पृष्ठ २२६

२२. राजतरंगिणी तरंग ४।१४४

कविर्वाक्पपति राज श्री भवभूत्यादि सेवितः ।

जितो ययौ यशोवर्मा तद्गुण स्तुतिवन्दिताम् ।।

२३. वही तरंग ४।१४०

प्रीतेः पञ्व महाशब्द भाजनं तं व्यघत्त सः ।

यशोवर्म नृपं तं न्व समूलमुदपाटयत् ।।

२४. वही, तरंग ४। १३८

२५. राजतरंगिणी ४।१३७,१४०

श्री यशोवर्मणः सन्धौ सान्धि-विग्रहिको न यत् ।

नयं नियमनालेखे मित्रशर्मा ऽ स्य चक्षमे ।।

प्रतिः पञ्चमहाशब्दमाजन तं व्यघत्त सः ।

२६. वही तरंग ४।१४२-१४३

महाप्रतीहारपीडा स महासन्धिविग्रहः।

महाश्वशालाऽपि महामाण्डागारश्च पञ्यमः ॥

महासाघनभागश्चेत्येता यैरमिघाः श्रिताः।

शाहिमुख्या येष्वमन्नध्यक्षाः पृथिवीभुजः ॥

२७. वही तरंग ४।१५२-१५३

२८. राजतरंगिणी, तरंग ४।१७६-१८०

बन्यमुद्रा मिघानाय पश्चाद बाहू तदाज्ञया।

तुरुष्का दघते व्यक्तं मूर्धानं चार्धमुण्डितम् ॥

क्षितिभृद् दाक्षिणात्यानां तिर्यक व ज्ञापनाय सः।

पुच्छं महीतलस्पर्शि चक्रे कौपीन वासिस ॥

२६. राजतरंगिणी ४।२१८

हेलयाऽपि विनिर्यान्ती क्त्राद् वसुमतीपतेः।

न कदाचन तस्याज्ञा देवैरप्युदलङ्घयत ॥

३०. द्रष्टव्य, राजतरंगिणी, तरंग ४।२१६-२४०

३१. महाभारत, अनुशासन पर्व , अध्याय १५१।१०

भोजनादेव लोकांस्त्रीन् त्रायन्तो महतोभयात् ।

दीपः सर्वस्य लोकस्य चक्षुश्चक्षुष्मतामपि ।।

३२. राजतरंगिणी तरंग ४।२६०-२६१

सलिलोत्त्तरणोपायो मणिर्देवेन गृह्यताम् ।

संसारोत्तरणोपायः सुगतो मह्यमर्प्यताम् ।।

इति तेनार्थितो युक्त्या जिनबिम्बं ददौ नृपः ।

वाग्मिनां कस्य सामर्थ्यं परिपन्थयितुं वचः ।।

३३. राजतरंगिणी ४।२७७-२६४

३४. राजतरंगिणी ४।२६७-२६८

अमात्य तव कृत्येन प्रीताः स्वामि हितैषिणः ।

मरावप्यत्र शीतार्ता इव रोमांचिता वयम ।।

अभेद्यसारे मयि तु व्यक्तमेवं विघोऽपि ते ।

प्रयोगः कुण्ठतां यातो लोहं वज्रमणविव ।।

३५. वही, तरंग ४।३०१-३०२

इत्युक्त्वा सोऽम्बु निष्क्रष्टुं कुन्तेनोर्वीं व्यदारयत् ।

उज्जिहीर्षुर्वितस्ताभः शूलेनेव त्रिलोचनः ।।

अथोज्जगाम पातालक्ष्मीलीला स्मितच्छविः ।

रसातलात् सरित् सार्कं सैन्यानां जीविताशया ।।

३६. मनुस्मृति ७।१५८,१६०

अनन्तरमरिं विद्यादरिसेविनमेव च ।

अरेरनन्तरं मित्रमुदासीनं तयोः परम् ।।

सन्धिं च विग्रहं चैव यानमासनमेव च ।

द्वैधीभावं संश्रयं च षड्गुणांश्चिन्तयेत् सदा ।।

३७. राजतरंगिणी तरंग ४।३३७,३४०,३४१

अनन्या क्रान्त पृथिवी समालोकन कौतुकी ।

अपारं प्रविवेशाथ पुनरेवोत्तरापथम् ।।

चिरमज्ञात वृत्तान्तै र्मन्त्रिभिः प्रहितस्ततः ।

प्रत्यावृत्तस्तस्य पार्श्वाद् दूतस्तानेवमुक्तवान ।।

इत्यादिशति वः स्वामी कोऽयं मोहो भवामशाम् ।

क्षमामिमां मे प्रविष्टस्य प्रतीक्षध्वे यदागमम् ।।

३८. राजतरंगिणी ४ । ६५७

तस्यानियतचित्तस्य त्रिंशतं परिवत्सरान् ।

एवं प्रतापिनः सैकान भूभोगो भूपतेरभूत् ।।

३९. राजतरंगिणी ४ । ५१७

नामान्यद् विनयादित्य इति प्रख्यापयभूपः ।

पूर्वाशां विनयादित्यपुरेणलंकृतां व्यधात् ।।

४०. राजतरंगिणी तरंग ४ । ४०७-४०८

कर्णीरथानां तस्यासीत् सपादं लक्ष्मीशितुः

अशीतिस्तु सहस्रणि देवस्याद्य जयोद्यमे ।।

तदाकर्ण्य जयापीडो बहु मेने न निर्जयम् ।

क्षिप्रं क्षितेः संकुचयन्त्याः कालस्य बलवत्तया ।।

४१. राजतरंगिणी तरंग ४ । ४११

दिनेराजसैन्यात् स्वदेशमरिणस्ततः ।

सैनिकाः संन्यवर्तन्त स्वामिभक्ति पराङ् मुखाः ॥

४२. राजतरंगिणी तरंग ४।४१४

स विसृज्य भुवं स्वां स्वां भूपतीऽननुयात्रिकान् ।

प्रयागमगमत्सैन्यै : परिमेयैर्निजैः समम् ॥

४३. द्रष्टव्य,(।) राजतरंगिणी, टीका०पं० रामतेज शास्त्री पाण्डेय (प्रकाशक चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी) पृष्ठ १०४, में टीका में प्रयाग क्षेत्र लिखा है ।

(।।) राजतरंगिणी डा० रघुनाथ सिंह, भाग २, पृष्ठ १८३-१८४ में सीधे पादटिप्पणी में प्रयाग का नाम इलाहाबाद देते हैं, यह भी लिखा है कि आईने अकबरी में अबुल फजल ने प्रयाग का अर्थ बनारस कर लिया है ।

(।।।) कल्हनाज राजतरंगिणी, आर० एस० पण्डित (साहित्य अकादमी नयी दिल्ली) पृष्ठ १५५, में केवल प्रयाग लिखा है ।

४४. राजतरंगिणी तरंग ४।४३८-४३६

दासस्तवायं कल्याणि गुणैः क्रीतोऽस्य कृत्रिमैः।

अचिराज्ज्ञातवृतान्ता ध्रुवं दाक्षिण्यमेष्यसि ॥

कार्यशेषमनिष्पाद्य सज्जं मानिनि कंचन ।

अभोगे कृतसंकल्पं सुखानां त्वमवेहि माम् ।।

४५. राजतरंगिणी तरंग ४ । ४४१

असमाप्रजिगीषस्य स्त्रीचिन्ता का मनस्विनः ।

अनाक्रम्य जगत्कृत्स्नं नो सन्ध्यां भजते रविः ।।

४६. राजतरंगिणी तरंग ४ । ४६२

राजपुत्रः क्ल्लट इत्युक्त्वा, कल्याणदेव्यसौ ।

तस्मै नियमिता दातुं निष्पुत्रेण सुता मया ।।

४७. राज० तरंग ४ । ४८६

उत्पत्तिभूमौ देशेऽस्मिन् दूर दूर तिरोहिता ।

कश्यपेन वितस्तेव तेन विद्याऽवतारिता ।।

४८. वही, तरंग ४ । ४८६

क्षीरामिधाच्छब्द विद्योपाध्यायात् संमूभ्रुतः ।

बुधैः सह ययौ वृद्धिं स जयापीड पण्डितः ।।

४९. वही, तरंग ४ । ४९१

तावत्पण्डित शब्देऽ भूद् राजशब्दादपि प्रथा ।

तैस्तैर्दोषैर्न तु म्लानिं कालान्तर वदाययौ ।।

५०. वही, तरंग ४।४६७

मनोरथः शंखदत्तश्चटकः सान्धिमांस्तथा ।

बभूवुः कवयस्तस्य वामनाद्याश्च मन्त्रिणः ।।

५१. राजतरंगिणी तरंग ४।५०६-५१३

५२. रघुवंश सर्ग १५।१०३

निर्वर्त्यैवं दशमुख शिरश्छेद कार्यं सुराणां

विष्वक्सेनः स्वतनुमविशत्सर्व लोक प्रतिष्ठाम ।

लङ्कानाथं पवनतनयं चोभयं स्थापयित्वा

कीर्तिस्तम्भद्वय मिव गिरौ दक्षिणे चोतरे च ।।

५३. राज० तरंग ४।५१६

सार्धं प्रचण्डै श्चण्डालैरटन्तः कटकाद् बहिः ।

तस्यासन् यामिका रात्रौ मुम्मुनि प्रमुखा नृपाः ।।

५४. राज० तरंग ४।५१७

५५. द्रष्टव्य। राज० तरंग ४।५२६-५३०

५६. राज० तरंग ४।५४६

स कालगण्डिका तीराश्रया त्युच्चा श्मवेमिन।

निचिक्षेप जयापीडमाप्तानां रक्षिणां करे ॥

५७. राज० तरंग ४। ५८८

कर्ण श्री पाटमबाघ्य स्त्रीराज्यान्निर्जिताद् घृतम।

घर्माधिकरणाख्यं च कर्म स्यानं विनिर्ममे ॥

५८. वही, तरंग ४।६१७

स तस्मात् क्रमराज्यस्यात् ताम्रमाकृष्य निर्भमे।

शतं दीनारकोटी नामेकोनं स्वाभिघाङ्कितम् ॥

५९. राज० तरंग ४।६२१

किं दिग्जयादिमिः क्लैशेः स्वदेशादर्ज्यतां घनमृ।

इत्यर्थ्यमानः कायस्थैः स्वमण्डलमदण्डयत ॥

६०. राज०तरंग ४।६२२, ६२६

शिवदासादि भिलुब्धैर्धन स्थानाधिकारिभिः ।

प्रविवर्धित वित्तेच्छः सोऽभूल्लोभ वशंवदः ।।

लुब्धत्व ध्वस्त धीर्भूभृत् स्वल्पवित्तलव प्रदान् ।

सर्वस्वहारिणो मेने कायस्थान् हितकारिणः ।।

६१. राज० तरंग ४।६३०

सर्वस्मात् स्फुटलुण्ठिताद् वितरतो लेशान् किलान्येऽपि ये ।

दुष्कायस्थ कुलस्य हन्त कलयन्त्यन्तर्हिता घायिताम् ।।

६२. वही तरंग ४।६२८

लोभाभ्यासात्तथा क्रौर्य स ययौ वत्स रत्रयम् ।

सहकर्षक भागेन यथाऽहार्षिच्छरत्फलम् ।।

६३. वही, तरंग ४।६३३

विप्राणां शतमेकोन मेकाहेन विपद्यते ।

निवेद्यमेतदित्यूचे क्रौर्याक्रान्तोऽथ पार्थिवः ।।

६४. वही, तरंग ४।६३८,६४०

तूल मूल्यापहर्ता च चन्द्रभागा तटे स्थितः ।

विप्राणां शतमेकोनमधृणोत्तज्ञले मृतम् ।।

अथ विज्ञप्ति समये तुलमूल्यौकसो द्विजाः ।

चुक्रुशु र्जात तस्याग्रे प्रतीहारकराहता ः ।।

६५. राज० तरंग ४। ६५३-६५५

नन्वयं पतितो जाल्मेत्यथ विप्रेण माषिते ।

राज्ञं कनकदण्डोऽङ्के वितानस्खलितोऽपतत् ।।

कृतव्रणः स तेनाङ्के विसर्पक्लिन्न विग्रहः ।

क्रीर्यमाण क्रिमिकुलः क्रकचैश्चरितैर भूत ।।

अनुमाव्य व्यथां भाविनिरयक्लेश वर्णिकाम् ।

गणरात्रेण तं प्राणाः काङ्क्षितापगमा जहुः ।।

६६. शुक्रनीति अध्याय ४।२-३

येनकेन प्रकारेण घनं सञ्चिनुयान्नृपः ।

तेन संरक्षयेद्राष्ट्रं बलं यज्ञादिकाः क्रियाः ।।

बलं प्रजारक्षणर्थं यज्ञार्थं कोशसंग्रहः ।

परत्रेह च सुखदो नृपस्यान्यश्च दुःखदः ।।

६७. मनुस्मृति, अध्याय ७।११०-११३

यथोद्धरति निर्दाता कक्षं धान्यं च रक्षति ।

तथा रक्षेन्नृपो राष्ट्रं हन्याच्च परिपन्थिनः ।।

मोहाद् राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया ।

सोऽचिराद् भ्रश्यते राज्याज्जीविताच्च सबान्धवः।।

शरीर कर्षणात् प्राणाः क्षीयन्ते प्राणिनां यथा ।

तथा राज्ञामपि प्राणाः क्षीयन्ते राष्ट्र कर्षणात् ।।

राष्ट्रस्य संग्रहे नित्यं विधानमिदमाचरेत् ।

सुसंगृहीतराष्ट्रो हि पार्थिवोः सुखमेधते ।।

६८. राज० तरंग ५।१२४-१२५

आत्यमनस्तत्र निश्चित्य विपत्तिं चिरगोपिताम् ।

प्रार्णान्ते प्राञ्जलिः शूरो वैषात्वमदर्शयत् ।।

तेनान्ते भगवतगीताः शृण्वता भावितात्मना ।

ध्यायता वैष्णवं धाम निरमुच्यत जीवितम ॥

६६. वही तरंग ५।१६-२०

अनन्तसंपत्संपन्न भूरिगोत्रज विप्लवे ।

राजश्री दुर्जरा तस्य नवत्वे भूभुजोऽभवत् ॥

विप्लुतान् समरे भ्रात्य भ्रातृव्यांश्च विजित्य सः ।

चकार भूरिभिर्वारि राज्यं विगतकण्टकम् ॥

७०. राज० तरंग ५।३३

युग्मैः क्षितिभुजां योग्यैरुह्ममाना महर्द्धयः ।

बुधाः प्रवृद्धसत्कारा विविशुर्भूपतेः सभाम ॥

७१. राज० तरंग ५।२८-२६

राजदौवारिकः श्रीमान् शूरस्यासीन्महोदयः।

महोदय स्वामिनो यः प्रतिष्ठां समपादयत् ॥

रुमटाख्यमुपाध्यायं ख्यातव्याकरण श्रमम ।

व्याख्यातुपदकं चक्रे स तस्मिन् सुरमन्दिरे ॥

७२. राज० तरंग ५ । ३४

मुक्ताकणः शिवस्वामी कविरानन्दवर्धनः ।

प्रथां रत्नाकरश्चागात् साम्राज्येऽवन्तिवर्मणः ।।

७३. ध्वनिसिद्धान्तः विरोधी सम्प्रदायः उनकी मान्यताएं, पृष्ठ १७

७४. राज० तरंग ५ ।४१

काव्यदेव्यभिधा शूरवधूः शुद्धान्वया व्यधात् ।

सदाशिवं सुरेश्वर्यां काव्यदेवीश्वराभिधाम् ।।

७५. राज०तरंग ४ ।७०४-७०५

अथ मम्मोत्पलकयो रुदभूद्दारुणो रणः ।

रुद्धप्रवाहा यत्रासीद् वितस्ता सुभटैर्हतैः ।।

कविर्बुधमनस्सिन्धुशशाङ्कः शङ्कुकाभिधः ।

यमुद्दिश्याकरोत्काव्यं भुवनाभ्युदयाभिधम् ।।

७६. नाटयशास्त्र, अभिनव भारती टीका अध्याय ६

७७. राज० तरंग ५ ।७४-७६

७८.   राज० तरंग ५।७८

स सुय्य नामा मतिमान् प्रवृद्ध--शिक्षिताक्षरः ।

कस्याप्यासीद् गृहपते र्रम काध्यापको गृहे ।।

७६.   वही, तरंग ५।८७-८८

क्रमराज्य स संप्राप्य देशे यक्षदरायिघे ।

अञ्जलिभ्यां निचिक्षेप दीन्नारान् सलिलान्तरे ।।

यत्र तीर द्वयालम्बिशैल निर्लुष्ठिताः शिलाः ।

चक्रु र्वितस्तां निष्पीडय पयः प्रतिपथोन्मुखम ।।

८०.   वही, तरंग ५।८०

तेषां कथाव्यवस्तासु निन्दतां जलविप्लवम ।

धीरस्ति मे निरर्थस्तु किं कुर्यामिति सोऽब्रवीत ।।

८१.   वही, तरंग ५।६४

दुर्भिक्षोपहता ग्राम्या दीन्नारान्वेषिणस्तदा ।

शिलाः प्रवाहों दुद्धृत्य वितस्तां समशोधयन् ।।

एवं दिनानि द्वित्री पयो युक्त्या विकृष्य तत् ।

वितस्तामेकतः थानात् कर्मकृदिमरबन्धयत ।।

८२. वही, तरंग ५ । ६४

अम्वालाङ्गा स्फुरन्मीना मूर्बभौ सलिलोज्झिता ।

व्यक्तकार्ष्ण्या सनक्षत्रा मिर्मेघेव नमः स्थली ।।

८३. राज० तरंग ५ । ११६-११७

यस्मिन् महा सुमिक्षेषु दीभाराणां शतद्वयी ।

धान्यखारेः प्राप्तिहेतुरासर्गादमवन्पुरा ।।

ततः प्रमृति तत्रैव चित्रं कश्मीरमण्डले ।

षट्त्रिंशता धान्यखारे र्दीनारैरुदितः क्रयः ।।

८४. कौटिलीय अर्थशास्त्र अधिकरण १ । प्रकरण ३ । अध्याय ५

एते चान्ये च बहवः शत्रुषड्वर्ग माश्रिताः ।

सबन्धुराष्ट्रा राजानो विनेशुरजितेन्द्रियाः ।।

शत्रुषडवर्ग मुत्सृज्य जामदग्नयो जितेदिन्द्रः ।

अम्बरीषश्च नामागो बुभुजाते चिरं महीम् ।।

८५. राज० तरंग ५।१२२

ईध्दैर्म्यधर्म्य वृत्तांतैः प्रवर्तितकृतोदयः।

अवन्तिदेवः पाति स्म मान्धातेव वसुन्धराम् ॥

८५क. राज० तरंग ७ । ७४६ - ७५३

विश्वास्तय स्वताटंकपाणिं कृत्वा प्रयाकम् ।

पार्श्वं विजयमल्लस्य सोऽथ गूढं कसर्जयत् ॥

तं पार्श्वं हर्षदेवस्य संदिश्येति व्यर्जयत् ।

उपायांश्चिन्तयन्नासीत्तस्य कार्यस्य सिद्धये ॥

८६. वही, तरंग ७ । ७८८

जहुस्ते कृत सत्कारा स्ताम्बूल ग्रहणक्षणे ।

ह्रीताः कराग्राच्छस्त्राणि प्रजिहीर्या च मानसात् ॥

८७. राज० तरंग ७ । ८२१ - ८२२

व्यापादयैनमेवादौ हर्षोत्कर्ष ततो नृपः ।

निष्कंटकोऽसि भवितेत्याप्त स्योपांशु जल्पतः ॥

ततो विजमल्लेन नाद्रोहेणहतं वचः ।

ज्ञात्वेङ्गितज्ञो हर्षस्तत्ततस्तु चकितः क्षणाम् ॥

८८. राज० तरंग ७ । ८३८

मह्यं प्राणाश्च राज्यं च त्वया दत्तमिति ब्रुवन् ।

स प्राञ्जलिस्तम करोत्क्लेशसाफल्यदायिनम् ॥

८९. राज० तरंग ७ । ८३१

तस्याभिषेक शब्देन समपद्यन्त सर्वतः ।

रसितेनाम्बुवाहस्य चातका इव मन्त्रिणाः ॥

९०. दोहावली (तुलसीदास) दोहा २८८ से ३१२

९१. राज० तरंग ७ । ८३०

वैयात्यच्छादितानन्तप्रातिकूल्या तदन्तिके ।

उपाविशद्य सुगला महादेवीत्व सिद्धये ॥

९२. राज० तरंग ७ । ८७५ - ८८०

न मतर्येषु न देवेषु तद्वेषो दृष्यते कृचित् ।

दानवेन्द्रेषु स प्राज्ञौः परमुत्प्रेक्ष्यते यदि ॥

प्रतिमार्कपरिमाणज्वलत्कुणलमण्डितः ।

उत्तुङ्गमुकुटानद्ध विकटोष्णीषमंडलः ॥

प्रसन्नसिंहविप्रेक्षी नीचश्मश्रुच्छटाञ्चितः ।

वृषस्कन्धो महाबहुः श्यामललोहितविग्रहः ॥

व्यूढवक्षाः क्षाममध्यो मेघघोष गंभीरवाक् ।

सेऽमावुषाणामपि यत् प्रतिभामङ्गकार्यभूत् ॥

सिंहद्वारे महाघण्टाष्चतुर्दिक्कमबन्धयत् ।

ज्ञातुं विज्ञप्तिकामान्स प्राप्कांस्तदुवाद्य संज्ञया ॥

आर्तीं च वाचमाकर्ण्य तेषां तृष्णानिवारणम् ।

प्रावृषेण्यः प्योबाहश्चातकानामिवाकरोत् ॥

६३. राज० तरंग ७ । ८८६ - ८९०

स्मृत्वापकारान् सुबहूनमात्यो नोनकःपरम् ।

घात्रेयेण समं भ्रात्रा कोपाच्छूले विपादितः ॥

कालेकाले तु कार्येषु संकटेषु महामतिम् ।

संसमरन् स्वामिभक्तं तं पश्चान्तारेम पस्पृशे ॥

६४. राज० तरंग ७ । ७१७

बहिर्हर्षकृतं गीतं गायनानां स गायताम् ।

विवृतद्वारविवरः शृणोतिस्म विनिःश्वसन् ॥

६५. राज० तरंग ७ । ७२०

अव्यक्तं वदतो हर्ष इति वाचं पुनः पुनः ।

निन्होतुं नोनको भावं तस्यादर्शमढौकयत् ॥

६६. वही, तरंग ७ । ६२५

स केषांचिदमात्यानागाकल्पोल्लासशोभिनाम् ।

निर्मत्सरः स्वदासीभिरारात्रिकमकारयत् ॥

६७. राज० तरंग ७ । ६२६ - ६२७

दाक्षिणात्याभवद्भाङ्गिः प्रिया तस्य विलासिनः ।

कर्णादानिगिणष्टङ्कस्ततस्तेन प्रवर्तितः ॥

लडन्तालीदला स्यूचन्दनस्यास सुन्दराः ।

रेत्रुर्जनास्तदास्थाने श्लाघ्यदीर्घासिधेनवः ॥

६८. राज० तरंग ७ । ६२८ -- ६३१

अधराम्बरपुच्छान्तैलम्बैश्चुम्बितभूतनाः ।

प्रच्छादितार्घचौर्लेख कञ्चुकाङ्कपयोघराः ।।

कर्पूपिद्घूनमस्मेरा भ्रमन्त्यस्तरलभ्रुवः ।

बर्भुराश्रित पुंवेषा झशाङ्कच्छलदङ्कताम् ।।

६६. राज० तरंग ७ । ६३७

त्यागिनं हर्षदेवं स श्रुउत्वा सुकविबन्धवम् ।

बिल्हणो वञ्चनां मेने विभूतिं तावतीमपि ।।

१००. वही, तरंग ७ । ६४६

क्षपास्थान स्थितिस्तस्य राज्ञः शक्रादिकश्रियः ।

कस्य वाचस्यतेर्वाचा वक्तुं कात्स्र्येन शक्यते ।।

१०१. वही, तरंग ७ । ६४३-६४८

१०२. शुक्रनीति १ । ११४

नृपस्य परमो धर्मः प्रजानां परिपालनम् ।

दुष्ट-निग्रहणां नित्यं न नीतया ते बिना स्तुभे ।।

याज्ञ० स्मृति १ । ३६१

कुलानि जातिश्च श्रेणिश्च गणान जानपदानपि ।

स्वधर्मात् प्रच्युतान् राजा विनीय स्थापयेत् पथि ।।

१०३. राजतरंगिणी तरंग ७ । ६४२

गीतमार्ण्यतेऽद्यापि तस्य वाग्गेयकारिणः ।

पक्ष्माग्र लुष्द्ध वाष्पोद बिन्दुभिः ।।

१०४. वही, तरंग ७ । १००७ - ७८

आनीय दत्तांस्तैज्ञातीनादाय द्रोहवर्जितः ।

स विमुक्ताधिकाशेऽथ मन्त्री वाराणसीं ययौ ।।

हत्वा गयायां सामन्तमेकमन्यं निवेश्य च ।

काश्मीरिकाणां चक्रे स श्राद्धशुल्क निवारणम् ।।

१०५. वही, तरंग ७ । १०६३ - ६५

स्वर्गरूप्यादि घटिता गीर्वाणाकृत्योऽलुठन् ।

अध्वास्विन्धनगण्डाल्य इव सावस्करेष्वापि ।।

विबुधप्रतिमाश्चक्रुराकृष्टा गुल्फदामभिः ।

घूत्कारकुसुमच्छभा भगूनग्राटकादयः ॥

ग्रामे पुरेऽथ नगरे प्रासादो न स कश्चन ।

हर्षराजतुरुष्केण न दो निष्प्रतिमिकृतः ॥

१०६. वही, तरंग ७ । १४७६

उपवीत्यक्षसूत्राङ्कपाणि दर्भोज्ज्वलांगुलिः ।

भस्मस्मेर ललाटाङ्को जामदग्न्य इवापरः ॥

१०७. वही, तरंग ७ । १४६२ - ६३

महानसाग्निधूमेन संलक्ष्यावीक्ष्य पुत्रयोः ।

सोत्कण्ठं कटकौ सौधादुदग्दाक्षिणहिकृस्ययोः ॥

क्रियतां दिवसैरैव पुत्रौ शत्रोः पितृद्विषः ।

जामदग्न्यादितं वंशे शम्बेति नृपतिं क्षती ॥

१०८. वही, तरंग ७ । १७२७

भृत्यत्यक्तो नष्टवंशो गौरकाख्येन केनचित् ।

काष्ठागारिणा चक्रे नग्नोऽनाथ इवाग्निसात् ॥

१०९. राजतरंगिणी, टीका० डॉ०रघुनाथ रिंह, खण्ड ३, पृष्ठ ४१७, तरंग ७ ।
१७१५, निम्न श्लोक पर पाद टिप्पणी -

यद्वैकेनैव संग्राम वैमुख्येनोन्नतात्मनः ।

सर्वप्रकार सुभगं माहात्मयं तस्य खण्डितम् ।।

११०. राजतरंगिणी, तरंग ७ । १७१४

नान्यः स इव कालेतिमनददृशे भूतिमान् नृपः ।

१११. वही, तरंग ७ । ११४८

संभोगं भगिनीवर्गे कुर्वता दुर्वचोरुपा ।

निगृहीती च मुक्ता च नागपुत्री पितृष्वसुः ।।

११२. वही, तरंग ७ । १७१९ - १७२०

तस्यासन् क्ष्मार्कजौ जीवबुधौ शक्रोष्णगू शशी ।

तनयामित्रजामित्रखेषु कर्कटजन्मनः ।।

चन्द्र दैत्येज्यपापाषु खमदात्मजगेषु यत् ।

आहुः सुसंहिताकाराः कौरवादीन् कुलान्तकान् ।।

११३. राज० तरंग ६।१९३

रिक्षित्री क्ष्मासेर्माता स्त्रीस्वभावाद् विमूढधीः ।

सारासारविचारेया लोककर्णी न पस्पृशे ।।

११४. राज० तरंग ६।२२६,२२६

गोस्वदोल्लंघने यस्याः शक्तिर्नाज्ञाभि केनाचित् ।

वायुपुत्रायितं पङ्क्वातया संघाब्धिलंघने ।।

अभिचारं महिम्नश्च कृतवत्या मितैर्दिनैः ।

मण्डलेऽखण्डिताज्ञत्वं रण्डायाः समजृम्मत ।।

११५. राज० तरंग ६।३१३

अथ मृत्युदवो राज्यनाम्नि स्वैरं मिवेशितः ।

क्रूरया चरमः पौत्रो भिम्गुप्तमिघस्तथा ।।

११६. वही० ६।३२२

तुंगानुरागिणी राज्ञी पापा लज्जोज्झिता ततः ।

रमदानेन वैमुख्यभाजं भुय्यमघातयत् ।।

११७. राज० नरंग ६।३६६

स्त्रीसम्बन्धेन भूपालवंश्यानां भुवनाद्भुतः ।

तृतीयः परिवर्तोऽय वर्ततेऽमुत्र मण्डले ॥

११८. राज० तरंग ६ । ३६३

शूरस्य लभ्यं शौर्येण भीरेर्भीरुतया तथा ।

कार्य हि प्रतिभात्यन्तर्न भवेद्य तन्यथा ॥

अध्याय ४

राजरंगिणी के कतिपय मंत्रियों का चरित्र विश्लेषण

राजतरंगिणी पढ़ने से यह प्रतीत होता है कि अविमुक्ता पीढ़ ललितादित्य के वाद जो भी राजा हुए उनको मंत्रियों ने अपनी चापलूसी से बहुत प्रभावित किये और उन मंत्रियों की सलाह पर बहुत आश्रित होते थे, जव कोई मंत्री चापलूसी छोड़कर अच्छे परामर्श देने लगता था, तव वह राजा को अच्छा नहीं लगता था औ और राजा उसके\निकाल भी देता था । मंत्रियों के ऐसे निष्कासन से राज्य की क्षति हुई है और स्थिति डाँवाडोल होती रही है । कल्हण ने जो कुछ लिखा है वह पूरा इतिहास ऐसा ही है ।

पिशुन मंत्रियों ने कश्मीर के राजाओं को पूरी तरह नष्ट किया । तथा सुन्दरी स्त्रियों ने शासन पर अधिकार रखा । शुक्रनीति में कहा गया है - कि पिशुन मंत्रणा करने वाले आपस में बिगाड़ कराकर राज्य को नष्ट कर देते हैं, इसलिए राजा को चाहिए कि यत्नपूर्वक ऐसी पिशुन मंत्रणाओं से अपने को दूर रखे ।[१] कश्मीर के राजाओं पर पिशुन मंत्रियों का वर्चस्व सदैव बना रहा । कतिपय राजा ही उसके अपवाद रहे, उनमें कल्हण का समकालीन जयसिंह भी है, जिसके राज्यकाल में राजतरंगिणी की रचना हुई है ।

राजतरंगिणी के प्रबन्ध में दो मंत्री विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं - एक है ललितादित्य का मंत्री मित्र शर्मा, जिसने कन्नौजनरेश यशोवर्मा से सन्धि के समय ललितादित्य को सावधान किया था तथा सन्धि में ललितादित्य का प्रथम नामोल्लेख कराया था, दूसरा मंत्री है जयापीड का देवशर्मा, जिसने नेपाल-नरेश के संघर्ष में अपने प्राण निछावर कर जयापीड की रक्षा की थी, उसके प्राण बचाये थे; स्वामी के लिए मंत्री का प्राण त्याग जैसा ऊँचा चारित्रिक मनोबल कम ही देखने को मिलता है। कल्हण के पिता चण्यक महाप्रभु का चरित्र भी विशिष्ट है जिन्होंने हर्ष के संकट के समय मे अथवा उनकी मृत्यु आसन्न जान कर भी उनका साथ नहीं छोड़ा । रक्क आदि पिशुन स्वभाव वाले ऐसे भी मंत्री से जिन्होंने झूठ-झूठ बोलकर अपना कार्य सिद्ध किया तथा राजा और राज्य की परवाह नहीं की ।

जिन्होंने स्वामिभक्ति और अपनी विचक्षणा बुद्धि से अपने राजाओं की सहायता की है ऐसे अमात्य कश्मीरी राजाओं को बहुत कम मिले, वे अंगुलियों पर ही गिने जाने योग्य हैं तथा कश्मीरी राजाओं के इतिहास में आश्चर्य का विषय हैं, दुष्ट मंत्रियों के बीच ऐसे उज्ज्वल चरित अमात्यों में प्रमुख हैं -

१. मित्र शर्मा (राजा ललितादित्य के अमात्य)

२. देवशर्मा (राजा जयापीड के अमात्य) तथा

३. चण्यक महाप्रभु (राजा हर्ष के अमात्य)।

इन तीनों अमात्यों के उन कार्यों का वर्णन- विश्लेषण आगे किया जा रहा है जो उन्होंने राज्य और राजा के हित को सर्वोपरि रख कर किया, तथा अपने हितों या प्राणों की परवाह भी नहीं की है ।

मित्र शर्मा

मित्र शर्मा राजा ललितादित्य (७००-७३७ई.) का संधि विग्रहिक था । ललितादित्य अपने युद्ध, प्रेम और विजयों के लिए प्रसिद्ध है, वस्तुतः ये युद्ध और विजय उसकी धन बटोरने की इच्छाएं थी, उनके पीछे राज्य-विस्तार या सुशासन की स्थापना जैसा कोई विचार नहीं था ।

ललितादित्य ने कन्नौज नरेश यशोवर्मा पर आक्रमण की उसे पराजित किया । ललितादित्य की बड़ी सेना के सम्मुख यशोवर्मा को आत्मसमर्पण के अतिरिक्त दूसरा रास्ता नहीं था । फिर सेना का खर्च देकर सन्धि हुई । सन्धि पत्र लिखा गया ।

सन्धि पत्र लिखने में नियम का उल्लंघन हुआ, लिखा गया कि यह सन्धि-यशोवर्मा और ललितादित्य की है, यह सन्धि लेख मित्र शर्मा को प्रतीत हुआ उसने इसका विरोध किया ।[२] राजा ललितादित्य ने इस सूक्ष्म नय को बहुत महत्व दिया - औचित्यापेक्षितां तस्य क्षितिभृद बह्वमन्यत" तथा मित्रशर्मा पर बहुत प्रसन्न हुआ, उसने मित्रशर्मा को पंञ्चमतशब्द का अधिकारी बनाया - प्रीतः पञ्चमहाशब्दभाजनं तं व्यधत्त सः । और यशोवर्मा का समूल उत्पादन किया । पंचमहाशब्द (पाँच कर्मस्थान) इस प्रकार है -

महाप्रतीहारपीडा स महासन्धिविग्रहः ।

महाश्वशालाऽपि महामायडागारश्च पञ्चयः ।।

महासाधन भागश्चेत्येता यैरभिधाः श्रिताः ।

शाहिमुख्या येष्वभवन्नध्यक्षाः पृथिवीभुजः ।।

(रा. तरंग ४।१४२-४३)

महाप्रतिहारपीडा, महासन्धिविग्रह, महाअश्वशाला, महाभाण्डागार तथा महासाधनभाग । इन पदों पर पहले मुख्य मुख्य शाही कुल के सामन्त, राजा, अध्यक्ष हुआ करते थे, लेकिन ललितादित्य ने प्रसन्न होकर सभी पाँचों पदों पर केवल मित्रशर्मा को एकमात्र अधिकारी नियुक्त कर दिया । मित्रशर्मा को एकमात्र अधिकारी नियुक्त कर दिया । पहले से अष्टादश कर्म स्थान स्थापित थे, बाद में ये पाँच कर्म स्थान उनसे अतिरिक्त प्रतिष्ठित किये गये । (तरंग ४।१४२) इन पाँचों स्थानों का एक मात्र अधिकारी होना मित्र शर्मा का बहुत बड़ा सम्मान था, जो उसके राजनीतिक सन्धि विग्रहिक कुशलता के लिए प्राप्त हुआ ।

यशोवर्मा को मित्र शर्मा की इस राजभक्ति से बड़ा नीचा देखना पड़ा । कल्हण लिखते हैं कि जिस यशोवर्मा का यशोगान कवि वाक्पतिराज और भवभूति किया करते थे आज वही यशोवर्मा पराजित होकर ललितादित्य की वन्दना करने लगा।[3]

कदाचित् यशोवर्मा राज यमुना के तट से पूर्व में गंगा से संगम करने वाली कालिका (काली) नदी तक था । यशोवर्मा की यह राज्यभूमि ललितादित्य के लिए घर के आँगन समान हो गयी ।[४] इससे यह भी प्रतीत होता है कि यशोवर्मा के राज्य का विस्तार बहुत ज्यादा नहीं था ।

ललितादित्य की कान्यकुब्ज विजय में इस प्रकार मित्र शर्मा अमात्य की कूटनीति विजय का यह इतिहास भी जुड़ गया । एक ओर यशोवर्मा ललितादित्य से पराजित हुआ और दूसरी ओर राजनीति में उसकी पराजय मित्र शर्मा से हुई ।

हमें यहाँ पर यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि ललितादित्य की इस विजय का कान्यकुब्ज पर आक्रमण और यशोवर्मा की पराजय उल्लेख कश्मीरी कवि कल्हण ही करता है । अन्यत्र इसका कोई उल्लेख नहीं है । हो सकता है कि कल्हण ने जो इतना बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन किया है वह वर्णन पूर्व के कश्मीरी कवियों के नृपावलि-वर्णन से लिया हो । उसमें सत्य को विपुल कल्पना से मंडित कर दिया गया है । कल्हण यद्यपि इतिहास के वर्णन में पूर्ण सत्य रहने के लिए ही दृढ़ संकल्प है[५] पर उसे जो अधिकार मिला वह ही कल्पना मंडित तथा कई अंशों में असत्य हो सकता है । कल्हण ने अपनी वर्तमान तथा कुछ समय पूर्व बीते अतीत के वर्णन में कहीं झूठ का कल्पना नहीं आने दिया है, उसने अपने पिता हर्ष की बुराइयों को पूर्ण रूप से वर्णन करने में भी संकोच नहीं किया है ।

देवशर्मा

देवशर्मा राजा जयापीड का अमात्य था । जयापीड का गज्काल ७४६ ई. से ७७७ ई. तक है । यह राजा एपने पितामह ललितादित्य का अनुकरण कर रहा था और उनके समान बनने के लिए दिग्विजय के लिए दो बार रण-प्रयास किया । इस रण-प्रयाण में दूसरी बार उसे नेपालनरेश अरमुडि के षड्यन्त्र में प्राणों पर संकट आ गया, वह पत्थर की कोटरी में बन्दी बना दिया गया तब अमात्य देवशर्मा ने अपने प्राण निछावर कर राजा जयापीड को बचाया था । स्वामी की रक्षा के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देना अत्यन्त ही निष्ठावान् अमात्य का महान् चरित्र है । दवशर्मा ललितादित्य के अमात्य महासन्धि-विग्रहिक मित्र शर्मा का पुत्र था ।[६] पिता के समान पुत्र भी राज्यभक्ति के प्रति अत्यन्त निष्ठावान् थे । किन्तु देवशर्मा अत्यन्त निष्ठावान् होकर भी पिता के समान राज्य कव्यवस्था में पंचमहाशब्द भाजन नहीं था, यह राजा की भूल कही जायगी । पंचमहाशब्दभाजन कोई जयस्त्र था । जिसने जयपुर कोट में मठ बनवाया था ।[७]

प्रथम बार के दिग्विजय प्रयाण में भी जब सब ने साथ छोड़ दिया था, देवशर्मा ने राजा जयापीड का साथ नहीं छोड़ा, वह उसके हित एवं रक्षा में सदा सन्नद्ध रहा, इसका उल्लेख कल्हण करते हैं । राजा को विजयी बनाकर वह स्वदेश लौटा ।[८]

दूसरी बार दिग्विजय के लिए वह पुनः पूर्व की ओर नेपाल भूमि के तटवर्ती राज्यों को विजय की आकांक्षा से चला । कल्हण करता है कि उसकी सेना में विपुल सैनिक थे । रात्रि में चाण्डालों के साथ मुम्मुनि प्रमुख (तुर्क राजा) सेना में बाहर पहरा देते थे ।[९]

मायावी राजा अरमुडि

नेपालपालक मायावी राजा अरमुडि ने जयापीड की सेना को देखा तो अधीनता नहीं स्वीकार

की, किन्तु वह अपनी सेना को लेकर सुदूर चला गया । राजा जयापीड ने इसे अपनी विजय समझा, और बिना प्रयास के छोटे राजाओं को विजय करते हुए आगे बढ़ता गया । अन्त में अरमुडि ने राज्य के सीमान्त पर गण्डकी नदी के दूसरे तट पर (दूसरे बार) अपने छत्र और पताका के साथ सेना का शिविर लगा दिया । राजा जयापीड बढ़ता गया । गण्डकी नदी के इस तट से उसने दूसरी ओर शत्रु की सेना को देखा । उसको नदी में जल छिछला दिखायी दिया । ऐसा मालूम पड़ा कि नदी में जल जानुपर्यन्त ही है । जयापीड ने शत्रु पर आक्रमण करने के लिए नदी पार कर उस ओर जाना चाहा । उसने सेना सहित नदी में प्रवेश किया । कल्हण लिखता है कि उसी समय वर्धमान बेला से समुद्र तटवर्ती वह नदी अनवसर में ही अगाध हो गयी । नदी के अति वेग प्रवाह में सेना बह चली । राजा के अंशक और आभूषण गिर गये, वह नदी को पार करने के प्रयास में हाथों से लहरों में तैरता हुआ बहकर दूर चला गया । अरमुडि ने दृति (मशक) से सन्नद्ध पुरुषों द्वारा राजा जयापीड को नदी के बीच से पकड़वा लिया और गण्डिका (गण्डकी) नदी के तीर पर उँचे पर बनी पत्थर की कोठरी में बन्दी बना दिया । तथा देख-रेख के लिए विश्वस्त रक्षकों को नियुक्त कर दिया । (तरंग ४।५३१ - ५४६)

अरमुडि नेपाल का पालक था, यह कल्हण ने लिखा है (मायावी अरमुडिर्नाम राजा नेपालपालकः ४।५३१) । डॉ. रघुनाथ सिंह की टिप्पणी है कि अरमुडि तिब्बती शब्द है, संभवतः अरमुडि तिब्बत की ओर नियुक्त नेपाल तक तिब्बत का अधिकार का , नेपाल तिब्बत की सीमा पर गण्डकी नदी थी । और उसने अरमुडि मे तिब्बत की रक्षा के लिए जयापीड का प्रतिरोध किया और उसको बन्दी बनाया ।

राजा की इस दुर्दशा से देवशर्मा बहुत चिन्तित हुआ । और उसने राजा के उद्धार के प्रयत्नों पर विचार किया अपनी योजना के अनुसार उसने अरमुडि से मिलने के लिए किसी प्रकार आज्ञा प्राप्त की, तथा अपनी सेना को दूर सन्नद्ध रखा । अरमुडि के साथ उसने एकान्त में परस्पर कोशपान पूर्वक विचारकर धन लोभ के प्रति उसको आकृष्ट किया और कहा राजा की सेना में बहुत अधिक धन है, परन्तु वह किसके-किसके पास व्यस्त है यह नहीं मालूम हा, राजा से मिलने पर ही पता चलेगा । यहां कोशपान पूवक कहने का अर्थ शपथ पूर्वक वाचतीच करने से है । देवशर्मा ने कुछ इस प्रकार की शपथ की कि आपमुझे अपना विश्वस्त बनाइए मैं आपको जयापीड का सारा धनकोश तथा कश्मीर मंडल का राज्य भी आपके हस्तगत करवा दूँगा । ” इसके लिए मुझे राजा जयापीड से बातचीत करने का अवसर दिलवाइए जिससे मैं जान सकूँगा कि धन सेना में किनके पास व्यस्त है । राजा इस समय संकट में है, वह अवश्य इस भेद को मुझे बता देगा ।

अरमुडि से आज्ञा प्राप्त कर देवशर्मा राजा से मिला । राजा जयापीड को देखकर धैर्यसागर देवशर्मा ने अपने हृदय के शोक को वहां रक्षकों के सामने नहीं प्रकट होने दिया, फिर सबको हटाकर स्थान को निर्जनकर उसने राजा से कहा - 'राजन ! आपका आधारभूत तेज तो रक्षित है ।' राजा ने कहा - 'मन्त्रिन् ! आज इस निःशस्त्र स्थिति में आधारभूत तेज के रक्षित होने पर भी मैं कौन सा अद्भुत कार्य कर सकूँगा ।' देवशर्मा पुनः बोला - 'राजन् ! यदि तुम्हारा तेज विद्यमान है तो तुम क्षणभर में ही विपत्ति का समुद्र पार कर जाओगे ।'

मन्त्री ने कहा कि आप कक्षके इस वातायन से नदी के जल में कूद जाइएगा, वहॉ आपको दृति (मशक) मिलेगी उससे नदी को पार कर जाइए, नदी के उस पार आपकी सुसज्जित सेना खड़ी है ।

राजा जयापीड ने कहा कि मैं बिना दृति के यदि जल में कूदूँगा तो जल से निकल नहीं पाऊँगा और यहाँ दूर से गिरने पर दृति भी विदीर्ण हो सकता है । अतः यह उपाय यहॉ ठीक नहीं है ।

इसके बाद अमात्य देवशर्मा ने राजा से कहा कि आज दो घरी किसी उपाय से बाहर व्यतीत कीजिए, मुझे अकेला छोड़ दीजिए । तब आप आकर देखेंगे कि मैंने आपको नदी पार करने का उपाय ठीकर कर दिया है और आप निःशङ्क होकर नदी पार कर जाइएगा ।

देवशर्मा की मृत्यु —

राजा दो घड़ी के लिए पादुक्षालन कक्ष में चला गया । और जब उसने पुनः प्रवेश किया तब देखा कि वस्त्र के खण्ड से बाँधकर देवशर्मा मृत पड़ा है । वस्त्र के कोने में अपने रक्त और नख से एक लेख उसने लिख दिया है - मैं अपनी देह रूपी अभेद्य दृति दे रहा हूँ । इस पर आरूढ़ होकर नदी पार करने में समर्थ होओगे । उष्णीष की पट्टिका जॉघों में बॉध दी है । उसमें प्रवेश कर इसके साथ शीघ्र जल में कूद पड़ो तथा नदी को पारकर सेना के बीच पहुँचो ।

राजा यह देखकर विस्मय में पड़ गया । तथा अमात्य के स्नेह में डूब गया । कुछ देर मौन रहकर यथा निर्दिष्ट जल में कूद पड़ा तथा तैरते हुए नदी के उस पार पहुँच गया । (तरंग ४।५६५ - ५७८)

राजा के सेना में पहुँचते ही उत्साह छा गया । सेना ने जयघोष कर अरमुडि सहित नेपाल को तहस-नहस कर दिया । पत्थर के घर पर पहरा दे रहे रक्षकों को तब पता चला जब नेपाल को जयापीड अपने आक्रमण से लूट रहा था । देवशर्मा की यह एकातिक कार्रवाई और स्वामी के लिए उसका त्याग अभूतपूर्व है ।

कल्हण देवशर्मा की इस स्वामिभक्ति पर टिप्पणी करते हुए लिखता है कि जिस क्षण में जज्ञ जैसे राजद्रोहियों का जन्म हुआ, आश्चर्य है उसी समय और क्षण में देवशर्मा जैसे पुण्यकर्मा मन्त्री का भी जन्म हुआ था । (जज्ञ राजा जयापीड का साला था जिसने राजा के दिग्विजय पर निकलने पर राज्य पर अधिकार कर लिया था, बाद में वह राजा से पराजित हुआ ।) देवशर्मा अपने पिता मित्रशर्मा से किसी प्रकार भी भिन्न नहीं हुआ जैसे भानु का पुत्र शनैश्चर अपने पिता के तुल्य है[१२]

उपमा कि परिकल्पना में कल्हण की कवि-प्रतिभा कमजोर लगती है । मित्र शर्मा के पुत्र देवशर्मा की उपमा सूर्य और उसके पुत्र शनैश्चर से देना काव्य सौन्दर्य में न्यूनता लाता है ।

देवशर्मा जैसा अमात्य होना निश्चय ही आश्चर्यकारी है ।

चम्पक - चण्पक महाप्रभु

चम्पक महाप्रभु कवि कल्हण के पिता थे । इनके साथ महाप्रभु का विशेषण कवि ने स्वयं आदरार्थ लगा दिया होगा । चम्पक राजा हर्ष के मन्त्रियों में एक थे । हर्ष का राज्यकाल १०८६

ई. में ११०१ ई. तक रहा । चम्पक ने उनके महामात्य तथा द्वारपति जैसे उच्च पदों पर काम किया था ।

सुस्सल तथा उच्चल के आक्रमण से जब राज्यश्री ने हर्ष का साथ छोड़ दिया तब सभी अवसरवादी मन्त्री राजा से दूर होने लगे उस समय चम्पक राजा का पूरा साथ दिया । चम्पक और प्रयाग दो अति विश्वस्त जान राजा हर्ष के साथ थे ।

चम्पक राजा के लिए बहुत चिन्तित था । उधर राजा अपने पुत्र भोजदेव का कोई समाचार न मिलने से अत्यन्त उद्विग्न हो रहा था । चम्पक ने बहुत कहा कि मेरे चले जाने से आपकी सेवा में केवल प्रयाग रह जाएगा और आप आसताप हो जायंगे । अतः आप मुझे अपने साथ रखें । राजा ने जब चम्पक की ये बातें सुनी तब उसे पुत्र के स्नेहवश आँखों में आँसू गये, उसने चम्पक से कहा कि तुम तो निद्रोही हो अर्थात् मेरा सब प्रकार से साथ निभाने वाले हो तब मेरी आज्ञा का उल्लंघन क्यों कर रहे हो ? मैं पुत्र के बिना अन्धा हूँ । तुम्हें मेरे पुत्र पर किसी भी कारण से क्रोध नहीं करना चाहिए । (कदाचित् यह बात राजा हर्ष को मालूम थी कि एक घोड़ी को लेकर बोजदेव से चम्पक का कलह हो गया था ।) राजा का यह उपालम्भ सुनकर उसे संकट के समय छोड़कर लज्जित मुख से चम्पक राजकुमार भोजदेव का पता लगाने चल पड़ा ।" [१३] राजा हर्ष का यह कहना कि तुम तो मेरे प्रति विद्रोही हो, फिर मेरी आज्ञा का उल्लंघन क्यों कर रहे हो, इस अभिप्राय को प्रकट करता है कि राजा हर्ष चम्पक के प्रति कितना अधिक विश्वस्त था ।

चम्पक ने भृत्य, भाई आदि पचास लोगों के साथ राजकुमार का पता लगाने के लिए वितस्ता पार किया । पर अन्त में उस विपत्ति में उसे लेकर पाँच ही लोग रह गये । और अन्त में केवल धनक ही शेष रहा, जिसके साथ चम्पक राजकुमार का पता लगाने में प्रयासरत रहा ।

राजकुमार भोज के पास चम्पक नहीं पहुँच सका । भोज नगर से निकलकर दो-तीन अश्वारोहियों के साथ हस्तिकर्ण पहुँचा, उसे यह आशा थी कि पाँच-छह दिन में पुनः राज्य पर अधिकार हो जायेगा । (तरंग ७।१६५०-५१) वह माताओं द्वारा प्रदत्त पाथेय को लिये हुए रंगवाट में नागेश्वर नामक भृत्य की प्रतीक्षा कर रहा था, नागेश्वर भृत्य शत्रुओं से मिल चुका था । उसने राजकुमार को अकेला जानकर उन पर निर्भीक आक्रमण किया । राजकुमार ने भी इस कृतघ्नता का उत्तर वीरतापूर्वक युद्ध करते हुए दिया किन्तु वे वीरगति को प्राप्त हुआ - वीरशय्याम भूषयत् (७।१६५६) ।

चम्पक की न तो राजकुमार से भेंट हुई, और न वह राजा हर्ष के पास ही पहुँच सका । यह सब अत्यन्त मर्मभेदी प्रकरण रहा । पुत्र की मृत्यु का समाचार जानकर राजा की जो आन्तरिक वेदना हुई, उसका वर्णन शत्रु भी नहीं करते राजा ने अब अपने जीवन को व्यर्थ समझा ।

चम्पक के दुःख का आनुमान लगाया जा सकता है । राजा हर्ष के प्रति उसकी निष्ठा अन्त तक बनी रही । कल्हण ने नीति विरूद्ध आचरण करने वाले हर्ष की कहीं-कहीं अत्यन्त प्रशंसा की है यहाँ तक कि उसके वृत्तान्त को रामायण और महाभारत के समान आश्चर्यकारी बताया है, (जो कि व्यर्थ की अतिशयोक्ति है) -

दीर्घो हर्षनृपोदन्तः सोऽयं कोऽप्यद्भुता वहः ।

रामायणस्य नियतं प्रकारो भारतस्य वा ।।

(तरंग ७।१७२८)

कल्हण द्वारा यह प्रशंसा किया जाना, प्रकारान्तर से उसके पिता चम्पक की भावना की अभिव्यक्ति है ।

अन्य

तीन मन्त्रियों का यह चरित अत्यन्त प्रशंसनीय है । लेकिन मन्त्रियों की अनगिनत संख्या ऐसी है जो लोभी, कामुक तथा राजद्रोही हैं । और खुशामद करके राजा को गलत मार्ग पर ले जाने वाले हैं ।

धूर्तमन्त्री लोष्टधर ने ही धन का संचय करने के लिए राजा हर्ष को मन्दिरों तथा प्रतिमाओं को तोड़ने के लिए अचूक प्रेरणा दी थी । (तरंग ७।१०७७-१०९५)

राजा जयापीड के कायस्थ मंत्रियों ने राजा को धन का लोभ देकर प्रजा पर सीमा से पट कर लगवा दिया और उसे निर्दयतापूर्वक लिया गया । इन कायस्थों ने कहा - राजन् ! धन के लिए आप व्यर्थ ही दिग्विजय करने का कष्ट क्यों उठाते हैं । अपने मण्डल को ही दंडित कर धन इकट्ठा कीजिए । शिवदास आदि ऐसे कायस्थों के कहने से राजा धर्न के लोभ में लिप्त हो

गया । और उसे कायस्थों का मुखापेक्षी होना पड़ा । [१४]

चक्रवर्मा के मारे जाए पर उसके उत्तराधिकारी पुत्र ने भी पापी कायस्थों की सलाह पर प्रजा को बहुत पीड़ित किया था -

डामरै लुण्ठितो देशः प्रणारशे चक्रवर्मणः ।

उत्थाप्य पापान् कायस्थान् तेन भूयोऽपि दण्डितः ।।

(तरंग ५।४३६)

राज्य के भीतर उत्तराधिकार पर विवाद होने पर भीतर से जो भी होता हो ऊपर से ब्राह्मणों की परिषद् उसका निर्णय करती थी । कल्हण ने ब्राह्मणों की इस पंचायत की बहुत खिल्ली उड़ायी है, कह नहीं सकते यह पंचायत उसके वर्तमान में थी या वह अतीत की ब्राह्मण-परिषद् का परिहास कर रहा था । एक समय में जब उत्पल कुल का नाश हो गया और उत्तराधिकारी के रूप में राजकुल में कोई नहीं रह गया, तब अब राजा किसे बनाया जाये इसका निर्णय करने के लिए ब्राह्मणों की परिषद् बैठी । कल्हण लिखता है -

उत्पल कुल का नाश हो जाने पर नये राजा की खोज में गोकुल मन्दिर में ब्राह्मणों की परिषद् बैठी, ये ब्राह्मण क्या थे, बिना सींग के बैल थे, अपने शरीर पर मोटे कम्बल ओढ़े थे । धुएँ से जली दाढ़ी वाले उन ब्राह्मणों ने देर तक विचार किया पर कोई निर्णय न कर सके, किसी के मस्तक पर राज्याभिषेक का जल नहीं गिर सका, हाँ उनके भाषण से उड़ने वाले थूक से उनकी दाढ़ियों का अभिषेक अवश्य हो गया । [१५]

प्रायः यह वर्णन अनेक बार आया है कि ब्राह्मणों को दान देकर प्रसन्न कर लिया जाता था । परन्तु जयापीड के समय में ऐसे भी ब्राह्मण हुए जिन्होंने राजा की अनीति का जोरदार विरोध किया, और अपने ब्रह्म तेज से उसका विनाश ही कर दिया । (तरंग ४।६४८-५६)

सन्दर्भ

१. शुक्रनीति, अध्याय ४।६६

राष्ट्रं कर्योजपैर्मित्यं हन्यते च स्वभावतः ।

अतः नृपः सूचितोऽपि विमृशेत् कार्यमादरात् ।।

२. राज० तरंग ४।१३७-१३६

श्री यशोवर्मणः सन्धौ संघिविग्रहिको न यत् ।

नयं नियमनालेखे मित्रशर्माऽस्य चक्षमे ।।

सोऽभूत् सन्धिर्यशोवर्मललितादित्योरिति ।

लिखितेनादिनिर्देशादनर्हत्वं विदन्प्रभोः ।।

सुदीर्घविग्रहाशान्तैः सेनानीभिरसूयिताम् ।

औचित्यापेक्षितां तस्य क्षितिभृद्बहमन्यत ।।

३. राज० तरंग ४।१४४

कविर्वाक्पतिराज श्रीभवभूत्यादिसेवितः ।

जितोययौ यशोवर्मा तद्गुण स्तुतिवन्दिताम् ।।

४. राज० तरंग ४।१४५

किमन्यत् कान्यकुब्जोर्वीयमुनापारतेऽस्यसा ।

अमूदाकालिकातीरं गृह प्रांगणवद्वशे ।।

५. वही, तरंग १।७

श्लाघ्यः स एक गुणवान् रागद्वेषवहिष्कृता ।

भूतार्थकथने यस्य स्थेयस्मेव भारती ।।

६. राज० तरंग ४।४६६

गतशेषम प्रमुत्यक्तं सैन्यं संवाहमन् स्थितः ।

मित्रशर्मात्मजो देवशर्माऽमात्यस्तमाययौ ।।

७. वही, तरंग ४।५१२

मन्त्री पञ्चमहाशब्दभाजनं जगतीभुजः ।

तस्मिन् जयपुरे कोहे जयदत्तो व्यधान् पठम् ।।

८. राज० तरंग ४।४७७

निजदेशं प्रति ततः स प्रतस्थे तदर्शितः ।

अग्रेजयश्रियं कुर्वन् पश्चान्ते च सुलोचने ।।

९.	वही, तरंग ४।५१६

सार्धं प्रचण्डैश्चण्डालैरटन्तः कटकात्बहिः ।

तस्यासन् यमिका रात्रौ मुम्मुनिप्रमुखा नृपाः ।।

१०.	देखिए, राजतरंगिणी डॉ० रघुनाथ सिंह भाग 2, पृष्ठ २३०

११.	राज० तरंग ४।५५३

जयापीडश्रिया साकं राज्यं कश्मीर मण्डले ।

दास्यामि तुभ्यमित्यस्य दूतैः स श्रावितोऽभवत् ।।

१२.	राज० तरंग ४।५८३-५८४

जज्ञादीनां क्षणो यत्र जन्म स्वामिद्रुहामभूत् ।

तत्रैव मन्त्रिणश्चित्रं कृतिनो देवशर्मणः ।।

नाभूद्विसदृशः सूनुः स पितुर्मित्रशर्मणः ।

तमोमयो भास्वरस्य भानोरिव शनैश्चरः ।।

१३.	राज० तरंग ४।१५८६-६२

सोऽभ्तर्वाष्पं बभाषे निर्दोहोऽसीति कथ्यते ।

त्वयाप्यास्मिन् क्षणे कस्मान्तेस्माद्दुल्लंघ्यते वचः ।।

विना पुत्रं न पश्यामि सार्केऽपि दिवसे दिशः ।

त्वं तस्मिमङ्क संवृद्धे न मन्युं कर्तुमर्हसि ।।

मिरा प्रमोरूपालब्धस्तदागूरणमर्मया ।

स लज्ञानम्रवदनो राजपुत्रानुसार्यगात् ।।

१४. राज० तरंग ४।६२१-६२३

किं दिग्विजयादिभिः क्लेशैः स्वदेशादर्जयतां घनम् ।

इत्यर्थयमानः कायस्थैः स्वमण्डलमदण्यत् ।।

शिवदासादिभिर्लुब्धैर्धनस्थानाधिकारिभिः ।

प्रतिदर्षितवित्तेच्छः सोऽमूवलोभवशंवदः ।।

काश्मीरिकाणांमुत्पन्नं निजाज्ञाव्यवधायकम् ।

कायस्यवक्त्रप्रेक्षित्वं ततः प्रभृति मूभृताम् ।।

१५. राज० तरंग ४।४६१-६३

अथोत्पलकुले छिन्ने स्थूलकम्बलवाहिनः ।

अश्रृंगोक्षनिभा विप्राः समगंसत गोकुले ।।

अध्याय ५

उपसंहार

राजतरंगिणी का प्रबन्ध क्या है - काव्य या इतिहास ?

यद्यपि यह मेरे अनुसन्धान का विषय नहीं है कि निश्चय या निर्णय किया जाये कि राजतरंगिणी का काव्य है या इतिहास का प्रबन्ध ? तथापि राजाओं और मन्त्रियों की कहानी कहने के बाद कवि कल्हण के कृतित्व का स्वरूप बता देना आवश्यक हो जाता है, इस स्वरूप के निर्धारण से उसे और भी अधिक गहराई से समझा जा सकता है ।

पहली बात यह है कि इस हम यदि काव्य-प्रबन्ध कहते है तो इसकी उदात्त कथा क्या है, इसे स्पष्ट करना होगा । क्योंकि कवि के कृतित्व का प्रमाण - महतां च महच्चय यत् के अनुसार उदात्त जीवन्त कहानी होती है, जिससे समाज संजीवनी प्राप्त करता है । राजतरंगिणी का कोई कव्य नायक ऐसी जीवन्त कहानी का जनक नहीं है । और इसे यदि इतिहास कहते हैं तो यह बात भी अत्युक्ति होगी, यद्यपि ए. बी. कीथ जैसे संस्कृत साहित्य का इतिहास लिखने वाले विद्वान् उसको इतिहास लेखक के रूप में मान्यता देते हैं तथा उसकी प्रशंसा करते हैं । [१]

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि इतिहास किसका होता है । इतिहास एक कालखण्ड होता है उस काल खण्ड में राज्य, समाज तथा मानव के सांस्कृतिक क्रिया कलापों की कहानी होती है ।

हमारे यहाँ रामायण और महाभारत को विशेष रूप से । इन ग्रन्थों में उस समय का पूरा युग मुखरित है तथा दर्पण की तरह प्रतिबिम्बित है । यही नहीं, ये दोनों ग्रन्थ अपनी कहानी में समूचे भरतखंड को समेटे हैं । रामायण और महाभारत पढ़ने से हमें समूचे भारत का परिचय मिलता है, बहुत सारी यह विशेषता कालिदास के 'रघुवंश' महाकाव्य में भी है । इनसे विपरीत 'राजतरंगिणी' कश्मीर के धनलोभी तथा कामुक राजाओं के जीवन की डायरी है । कश्मीर के समाज समूचा प्रतिबिम्ब भी 'राजतरंगिणी' में नहीं है, केवल राजाओं के क्षुद्र क्रिया कलापों की सारिणी विस्तार के साथ दी गयी है । धन लोभ तथा कामुकता के प्रसंगों से पूरा प्रबन्ध ओत-प्रोत है । अतः उसे इतिहास कैसे कह सकते हैं ?

इस प्रकार यह राजतरंगिणी न तो काव्य है और न ही इतिहास है । जैसा कि राजाओं और उनके मंत्रियों के चरित्र- विश्लेषण से निष्कर्ष प्राप्त होता है । तब यह है क्या ? राजाओं की लीला की कहानियों की नदी है । सोमदेव का कथासरित्सागर हम पढ़ते हैं, उसकी कहानियों अतिशय रोचक हैं, द्वीप-द्वीपान्तरों के समाज का परिचय देती हैं, पुराण तथा पुरा प्रयाणकाल से लेकर दूसरी शती ईस्वी तक की ऐतिहासिक वार्ताएँ उसमें हैं, इसके साथ उसमें जो भी नीति, व्यवहार एवं सामाजिक सदाचार का उल्लंघन नहीं हुआ है, वे सभी कहानियाँ समाज के लिए हृदयग्राही हैं । राजतरंगिणी की राज-कथाएँ लोभ, बलात्कार तथा नीति विरुद्ध कामुकता से ओत-प्रोत हैं, न वे अनुकरणीय हैं न शिक्षाप्रद । अतः कथासरित्सागर (मूलग्रन्थ गुणाढयकृत बृहत् कथा) की कोटि में भी राजतरंगिणी को नहीं रखा जा सकता ।

कवि के अंह की तुष्टि

इस प्रकार कल्हण की राजतरंगिणी न तो काव्य है और नही इतिहास है ।

यह है कश्मीरी कवि के अहं की तुष्टि । जिसमें वह कहता है कि मैं प्रकृति के महान् उस कवि कर्म का विधाता हूँ जिसके चाहने पर ही राजाओं का यश सुरक्षित रह सकता है, नहीं तो ऐसे भी राजा हुए जिनकी भुजाओं की छाया में पृथिवी ने विश्राम किया, पर उनका कोई नाम भी नहीं जानता । (तरंग १।४६-४७) ५२ राजाओं का इतिहास इसलिए लुप्त हो गया कि उनके समय में उनके अपुण्य से उनके चरित के गायक कविवेधा उस समय नहीं उत्पन्न हुए ।

राजतरंगिणी प्रबन्ध राजाओं की ही कहानी करता है यह हमारी परम्परा के विरुद्ध है, समस्त पुराण, रामायण, महाभारत, यहाँ तक कि रघुवंश भी राजवंशों के साथ ऋषि कुलों की कहानी से अपने प्रबन्ध को उज्ज्वल बनाते हैं । इस दृष्टि से भी राजतरंगिणी हमारी परम्परा से भिन्न कृतित्व लगता है । यह बात दूसरे अध्याय में कही जा चुकी है ।

उपमाओं और सूक्तियों में सहज सौन्दर्य का अभाव

इनसे अतिरिक्त कवि का कृतित्व उसके प्रबन्ध के काव्य-सौन्दर्य पर निर्भर करता है । कवि कल्हण की भाषा प्रौढ़ है वह वाणी पर अधिकार रखता है, विद्वान् है पर उसकी काव्योक्तियों में वह सौन्दर्य नहीं है जिस कारण उसको ऊँचे और श्रेष्ठ कवि का दर्जा दिया जा सके । यह बात

उसकी उपमा सम्बन्धी परिकल्पनाएँ प्रकट कर देती हैं जिनमें उपमा का वह सौन्दर्य नहीं है जो अभिभूत कर ले । एक उदाहरण लीजिए -

स्त्रोतोधिराज्यराज्यमधिगम्य विराजमानात्

सिन्धोः प्रसूयकमलाल्यपयोनिकेते ।

जाते सरस्यविरतं जलजे प्रसक्ता

नार्यो महाभिजनजा अपि नीचभोग्याः ।।

(तरंग ६।३१८)

यहाँ पर कवि ने रानी दिद्दा की नीच कामुकता की उपमा लक्ष्मीभेदी है जो समुद्र से उत्पन्न है लेकिन सरोवर में फूले कमल पर आसन्न रहती है ।

भाव तथा सौन्दर्य से विहीन यह उपमा है । लगता है कि कल्हण ने सरोवर में दूर तक प्रफुल्लित कमल-वन को नहीं देखा था । नहीं तो ऐसा न कहता । शंकराचार्य ने ~~अन्नत~~ आनन्द लहरी में भवानी के शरीर की कान्ति की उपमा कमलवन पर प्रातःकाल के सूर्य आतम की संक्रान्ति सुषमा से दी है -

कवीन्द्राणां चेतः कमलवन बालातपरुचिं

भजन्ते ये सन्तः कतिचिदरुणामेव भवतीम् ।। (१६)

राजतरंगिणी में नीति और काल- विपर्यास की सूक्तियाँ बहुत हैं, लगभग इनकी संख्या चार

सौ होगी , ये सूक्तियाँ राजाओं के उत्थान-पतन, प्रमाद और विषाद की सीमा नहीं लाँघती, उसी के भीतर सिमटी हुई हैं । संसार के परिवर्तित बहुमुखी संसार से उनका परिचय नहीं है, इसलिए वे पाठकों को हृदयग्राही नहीं हो सकती । भर्तृहरि अथवा विदुर के नीति-वचन अथवा सूक्ति-सुधा का निस्यन्द उनमें नहीं है । राजाओं के जर्जर जीवन पर फैली वाणी की सूखी लता के समान इन सूक्तियों का गुम्फन है । उदाहरण लीजिए

प्रसंग है कि राजा हर्ष ने अपने कुल के वीर को (विजयमल्ल के पुत्र जयमल्ल को) गुप्त रूप से मरवा कर राज्य को दूसरों के ही भोगने योग्य बना दिया

संरूढं मधुगोलमुच्च विटप व्यूहावली गह्वरे

मूढोछ कर्तु मकृच्छहार्यममितः कस्यापि भव्यात्मनः ।

दैवप्रेरणाया प्रकम्पविवशः पत्रप्रहारैर्दृढं

तद्गोप्तृन् मधुपान्निहत्य शमयत्यश्वत्यपृथ्वीरुहः ॥

(तरंग ७।१०७१)

अश्वत्थ वृक्ष अपनी शाखाओं से दुर्गम है, उसमें ऊपर मधु का छत्ता है । दैव की प्रेरणा से हवा चली तो अश्वत्थ वृक्ष ने अपने पत्तों के प्रहार से मधुमक्खियों को भगा दिया, और किसी भाग्यशाली पुरुष के लिए पान करने योग्य मधु के छत्ते को बना दिया ।

वस्तुतः ऐसा होता नहीं। हवा तथा पत्तों के प्रहार से मधुमक्खियाँ भाग नहीं जातीं।

संदर्भ

१. संस्कृत साहित्य का इतिहास - ए० बी० कीथ (अनुवाद - मंगल देव शास्त्री)

पृष्ठ १६७ - २००